विवेक शिखा

श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिन्दी मासिक

वर्ष-१० अक्टूबर-१९९१ अंक-१०

कर्म, ज्ञान भक्ति और योग—इनमें से एक या अनेक या सबके द्वारा परमात्मा उपलब्ध होते हैं।

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा—८१३०१

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे—दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप—रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. मंगा सिंह महाविद्यालय—छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा – छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु०प्रभाकर राव शंखपाल —(महाराष्ट्र)
७६. श्री विजय कुमार सिंह, शुमरीतिलैया (बिहार)
७७. श्री रघुनन्दन सेठी, कोटा, (राजस्थान)
७८. श्री भुवनेश्वर प्रधान, जमशेदपुर (बिहार)
७९. डॉ० अमरेन्द्र कुमार सिंह, छपरा (बिहार)
८०. श्री रविशंकर पारीक ललित, जयपुर (राजस्थान)
८१. श्री सनत कुमार दुबे - सिवनी मालवा (म०प्र०)
८२. डॉ. आशीष कु. बनर्जी-रामकृष्ण मिशन, वाराणसी
८३. श्री चन्द्र मोहन—टुंडला (उ. प्र.)
८४. श्री बी. एल गुप्ता—मानवार (म. प्र.)
८५. डॉ. टी. जे हेमनानी – नागपुर (महाराष्ट्र)
८६. डॉ. एस. एम. सिंह —इलाहाबाद
८७. श्री श्याम सुन्दर बमरिया – बम्बई
८८. श्री जयप्रकाश गुप्ता – परौना, सारण (बिहार)
८९. श्री अमरेश कलना जयपुर, (राजस्थान)
९०. श्री प्रफुल्ल तुंगारे – पुणे (महाराष्ट्र)
९१. श्रीमती कमला घोष –इलाहाबाद
९२. श्री एस. डी. शर्मा - अहमदाबाद
९३. श्रीमती प्रभा शर्मा—बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री शशिकांत मिश्र—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री के० सी० सरकार—बम्बई
९६. श्री ए० के० चटर्जी, आई. ए. एस.—पटना
९७. सचिव, मियोलोजिकल ऑफ—छपरा (बिहार)
९८. श्री सुभाष वासुदेव—सुमडिंग (आसाम)
९९. श्री दिलीप देसाई, बड़ोदा (गुजरात)
१००. श्रीरामकृष्ण आश्रम—इन्दौर (म० प्र०)
१०१. सारदापीठ विद्यालय इन्दौर (म० प्र०)
१०२. डॉ० ओमप्रकाश वर्मा – रायपुर (म० प्र०)
१०३. विवेकानन्द विद्यापीठ—भोपाल (म० प्र०)
१०४. रामकृष्ण मठ—आमतारा (बिहार)
१०५. श्री सुनील खण्डेलवाल—रायपुर (मध्य प्रदेश)
१०६. श्री बसन्त लाल गुप्ता—नागपुर (महाराष्ट्र)
१०७. श्री जयेश ब्रह्मभट्ट—पुणे (महाराष्ट्र)
१०८. श्री नरेन्द्र कुमार टाक – अजमेर (राजस्थान)
१०९. श्री महन्त युक्तिरामजी—जोधपुर (राजस्थान)
११०. श्री राय मनेन्द्र प्रसाद – जमशेदपुर (बिहार)
१११. कुमारी उषा हेगड़े—पुणे (महाराष्ट्र)
११२ श्री विजय प्रकाश—पुणे (महाराष्ट्र)
११३. डॉ० वी० सी० सिन्हा—रीवां (मध्य प्रदेश)
११४. डॉ० एच० पी० सिंह – रीवां (मध्य प्रदेश)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. श्रीरामकृष्ण के प्रिय भजन	स्वामी निखिलात्मानन्द	२
३. बेलुड़ मठ की पहली दुर्गापूजा	स्वामी विमलात्मानन्द	३
४. धूल भरी यह पृथ्वी (कविता)	स्वामी पूर्वानन्द	९
५. क्षुरस्य धारा (३)	स्वामी त्यागानन्द	११
६ भगवत्कृपा—एक विचित्र रहस्य	श्री जानकी नाथ कौल 'कमल'	१९
७. रामचरित मानस में शिष्य के लक्षण	स्वामी शशांकानन्द	२५
८ स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	२८
९ तुम ही ब्रह्म हो	स्वामी विवेकानन्द	३१

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१० अंक - १० १९९१—अक्टूबर

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

फोन : ०६१५२-२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

जिस प्रकार एक ही आलू को अपनी रुचि के अनुसार उबालकर, तलकर, सूखी या रसेदार सब्जी बनाकर खाया जा सकता है, उसी प्रकार जगत्कारण ईश्वर एक होते हुए भी उपासकों की रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होते हैं ताकि सभी साधक उन्हें अपने प्रेमास्पद के रूप में पा सकें। किसी के लिए वे दयालु स्वामी या प्रेममय पिता हैं तो किसी के लिए मधुरहासिनी माता, किसी के लिए सुहृत् सखा तो किसी के लिए प्रिय पति या आज्ञाकारी पुत्र।

(२)

ईश्वर को माँ कहकर पुकारते हुए भक्त इतना आनन्दमग्न क्यों हो जाता है? क्योंकि बालक माँ के ही निकट सबसे अधिक स्वच्छन्द रहता है, माँ के ही ऊपर उसका सबसे अधिक जोर चलता है।

(३)

दीपक के नीचे अँधेरा ही रहता है, उसका प्रकाश दूर में पड़ता है। साधु-महात्माओं को उनके पास के लोग नहीं समझ पाते, दूर के लोग उनके भाव से मुग्ध होते हैं।

(४)

ईश्वर के प्रति प्रेम उत्पन्न होने पर कर्मत्याग अपने आप हो जाता है। ईश्वर जिन लोगों से कर्म करवा रहे हैं, उन्हें करने दो। जिनका समय आ गया है, वे सब छोड़कर कहें, – 'मन, हृदय में विराजमान माँ को तू देख और मैं देखूँ, और कोई न देखे।'

श्रीरामकृष्ण के प्रिय भजन

अनुगायक—स्वामी निखिलात्मानन्द
अध्यक्ष
रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद

(परजबहार—झपताल)

गया गंगा प्रभासादि काशी कांची केवा चाय ।
काली काली काली बोले अजपा यदि फुराय ।।
त्रिसंध्या जे बोले काली, पूजा-संध्या से कि चाय ।
संध्या तार संधाने फेरे, तोबु संधि नाहि पाय ।।
जप यज्ञ पूजा होम आर किछु ना मने लय ।
मदनेर याग यज्ञ ब्रह्ममयीर रांगा पाय ।।
कालीनामेर एतो गुण केबा जानते पारे ताय ।
देवाधिदेव महादेव जांर पंचमुखे गुण गाय ।।

×

भावानुवाद (परजबहार - झपताल)

गया गंगा प्रभासादि काशी कांची चाहे कौन ।
काली काली काली कह जब तत्पर होवे प्राण गमन ।।
त्रिसंध्या जो बोले काली, न भाये संध्या वन्दन ।
संध्या पीछे दौड़े उसके, डाल नहीं पाये बन्धन ।।
जप यज्ञ पूजा होम तप तीरथ न लागे मन ।
मदन के सब याग यज्ञ ब्रह्ममयी के श्रीचरण ।।
काली नाम में इतने हैं गुण भला कौन करे वर्णन ।
देवाधिदेव शिव भी जिसके पंचमुखों से गाये गुण ।।

बेलुड़ मठ की पहली दुर्गापूजा

—स्वामी विमलात्मानन्द
बेलुड़ मठ

प्रायः १० वर्ष पूर्व की घटना है—बाली के एक सनातन पंथी ब्राह्मण जगत बनर्जी ठीक गंगा किनारे स्थित एक छोटे से मठ प्रांगण में सहस्रों लोगों के जन समागम को देखकर आश्चर्य-चकित थे। लोग अहीरी टोला से 'होर मिलर' का स्टीमर पकड़कर या ट्रेन द्वारा किसी नजदीकी रेलवे स्टेशन से अथवा सालकिया से पांव पैदल चलकर वहाँ पहुँचे थे। यह सब देखकर केवल जगत बनर्जी को ही नहीं, वरन् भुवन मुखर्जी, शरत घोषाल, एवं उत्तरपाड़ा, दक्षिणेश्वर एवं अन्यान्य स्थानों के कई सनातन पंथी ब्राह्मणों को भी अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। वे लोग भी अपने आप को मठ जाने से रोक नहीं सके।

यह अक्टूबर, १९०१ ई० की घटना है। शरत्काल का सुहावना वातावरण—बालियों से लदे धान के लहलहाते पौधों से हरे-भरे खेत; कमल, जूही, रजनीगंधा, स्थलपद्म आदि पुष्पों की सुगन्ध हवा को सुरभित एवं सुखद बना रही थी। मात्र तीन वर्ष पूर्व स्थापित मठ में प्रथम बार यह शारदीय उत्सव मनाया जा रहा था। स्वामी विवेकानन्द द्वारा आरंभ की गयी. बेलुड़ मठ की यह पहली दुर्गापूजा थी, जिसमें मूर्ति स्थापित कर पूजा हुई थी। किन्तु पूजा उन दिनों से ही होती आ रही है, जब उत्तर कलकत्ता के वराह नगर में रामकृष्ण संघ की स्थापना हुई थी! रामकृष्ण संघ के द्वितीय महाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी शिवानन्दजी महाराज के अनुसार—"स्वामीजी ने वराहनगर मठ में दुर्गापूजा आरंभ की थी। हाँ, उन दिनों कलश स्थापित कर उसी में पूजा की जाती थी।"[1]

आसपास के विभिन्न स्थानों के बहुत से ब्राह्मण एवं पण्डित-वर्ग के लोग, जो स्वामी विवेकानन्द एवं बेलुड़ मठ के संन्यासियों की, उनके नवीन एवं दुस्साहसी विचारों, समुद्र यात्रा, रहन-सहन के उदार तौर तरीके, परम्परा विरुद्ध खाने-पान एवं जाति-भेद न मानने के कारण निंदा किया करते थे, वे विद्वेषभाव भूलकर इस पूजा में सम्मिलित हुए थे।[2] उनलोगों को विश्वास हो गया कि रामकृष्ण संघ के संन्यासीगण यथार्थ में सनातनी संन्यासी हैं। स्वामी विवेकानन्द के गृहस्थ शिष्य शरत्चन्द्र चक्रवर्ती के अनुसार स्वामीजी द्वारा इस पूजा का अनुष्ठान किये जाने का प्रधान उद्देश्य था, सनातन पंथियों के मन से समस्त विद्वेषपूर्ण एवं अविश्वास के भावों को दूर करना।[3]

स्वामीजी एक दशक से दुर्गापूजा नहीं देख पाये थे। इस बार वे देखना चाहते थे। किन्तु १९०१ ई० में मठ में मूर्ति स्थापित कर दुर्गापूजा करने का निर्णय उनका अपना था। १९०१ ई० के मई मास से ही वे ऐसा भाव हृदय में संजोये हुए थे। उन्होंने शरत् बाबू को 'रघुनन्दन स्मृति' लाने को कहा, जिसमें अच्छी तरह से एवं विस्तारपूर्वक विभिन्न देव-देवियों की पूजा विधि का वर्णन है। उन्होंने अच्छी तरह से इस पुस्तक को पढ़ा। शिष्य के पूछने पर स्वामीजी ने कहा—"इस बार दुर्गापूजा करने की मेरी इच्छा है। यदि

पर्याप्त अर्थ उपलब्ध हो जाय तो मैं महामाया की पूजा करूँगा।[4]

परन्तु १९०१ ई० के १८ अक्टूबर के मात्र कुछेक दिन पूर्वतक भी उन्होंने किसी के सामने अपनी इच्छा प्रकट नहीं की थी। दुर्गापूजा के कुछ दिन पूर्व जब स्वामी ब्रह्मानन्द मठ के गंगा की ओर वाले बरामदे में बैठे हुए थे उस समय उन्हें एक दर्शनानुभूति हुई। उन्होंने देखा कि दक्षिणेश्वर से गंगा के ऊपर चलकर माँ दुर्गा आयीं और बिल्ववृक्ष (वर्तमान में स्वामीजी स्मृति मन्दिर के पास) के नीचे आकर खड़ी हो गयीं। उसी समय कलकत्ता से स्वामीजी मठ में आये और आते ही पूछा—"राजा (स्वामी ब्रह्मानन्द) कहाँ है?" राजा महाराज को देखकर बोले—"प्रतिमा मंगाकर इस बार दुर्गापूजा करने का सब आयोजन करो।" स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज ने इस विषय पर सोचने के लिए कुछ समय की मांग की क्योंकि पूरी व्यवस्था करने के लिए बहुत कम ही समय बचा हुआ था। तब स्वामीजी ने अपने दिव्यदर्शन की बात कही। उन्होंने देखा कि मठ में प्रतिमा स्थापित कर माँ दुर्गा की पूजा हो रही है। स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने भी अपने दर्शन की बात बतायी। इस प्रकार के दिव्यदर्शन की बात जानकर मठ के सभी साधु एवं ब्रह्मचारियों का हृदय आनन्द एवं उत्साह से भर गया।[5]

मूर्ति की तलाश में ब्र० कृष्णलाल (श्री माँ सारदा देवी के मंत्र शिष्य, बाद में स्वामी धीरानंद) को कुम्हार टोली भेजा गया। सौभाग्यवश केवल एक ही मूर्ति उपलब्ध थी। कारण जिस व्यक्ति ने आर्डर दिया था, वह लेने नहीं आया। तदनुसार स्वामीजी को अवगत कराया गया। वे (स्वामीजी) और स्वामी प्रेमानन्द १६ ए, बोसपाड़ा लेन स्थित श्री माँ सारदा देवी के कलकत्ता निवास स्थान पर गये और दुर्गापूजा करने की अनुमति माँगी। माँ ने सहर्ष स्वीकृति दी।[6]

उसके बाद स्वामीजीने मूर्ति मठमें ले आने को कहा। गृहस्थ भक्तगण भी इस समाचार से अवगत हुए और उत्सव की शानदार सफलता के लिए परम उत्साह सहित संन्यासियों के संग सम्मिलित हुए।[7]

स्वामीजी ने एक अद्वैतवादी होते हुए भी मठ में मूर्ति स्थापित कर दुर्गापूजा क्यों की? उनके गुरुभ्राता स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) ने एक बार कहा था—"विवेकानन्द भाई जो देवी-देवता नहीं मानते, वे अपने देहत्याग के पूर्व माँ दुर्गा की मूर्ति लाकर उनकी पूजा की। यह भगवान की एक लीला है। क्या मूर्तिपूजा निरर्थक है? नहीं। इसके पीछे भी कुछ है। कोई साधक इस पथ पर चलकर भी अपने आध्यात्मिक जीवन में प्रगति कर सकता है। इस बात को समझकर ही माँ की मूर्ति स्थापित कर स्वामीजी ने पूजा की। और स्वामीजी की ये उक्तियाँ भी स्मरण रखने योग्य है "यदि मूर्तिपूजा द्वारा कोई एक रामकृष्ण परमहंस बन सकता है तो मैं हजार बार वैसा करूँगा। और "यदि मैंने उस 'मूर्तिपूजक' ब्राह्मण का चरण नहीं प्राप्त किया होता तो न जाने कहाँ होता!"

षष्ठी पूजा से एक या दो दिन पूर्व १८ अक्टूबर को कुम्हार टोली से मूर्ति मठ में लायी गयी।[8] मूर्ति ज्योंही मठ प्रांगण में पहुँची, त्योंहीं वर्षा होने लगी। स्वामी अभयानन्द (भरत म०) ने मठ की पहली दुर्गापूजा की यादगारी सुनाते हुए कहा था—"पुराने ठाकुर मन्दिर और मठ भवन के बीच के प्रांगण में एक अस्थायी पण्डाल खड़ा किया गया, जहाँ पूजा के लिए मूर्ति स्थापित की गयी। मूर्ति पश्चिमाभिमुख थी। प्रांगण में स्थित आम्र वृक्ष (जो अभी भी वर्तमान है) तक पण्डाल का फैलाव था और भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के साक्षात् शिष्यगण वहाँ बैठे थे।[9]

स्वामीजी ने महसूस किया कि पूजा के दिनों मठ में श्री माँ सारदा देवी का रहना अत्यन्त

आवश्यकहै। इसलिए माँ अपनी महिला सहचारियों के साथ आयीं और पास के नीलाम्बर बाबू के उद्यान भवन में ठहरीं, जिसे एक महीना के लिए भाड़े पर लिया गया।[11] प्रतिदिन दुर्गामण्डप में श्री माँ सारदा देवी एवं उनकी महिला सहचारियों की उपस्थिति सभी को असीम आनन्द प्रदान करती थी। वस्तुतः जीवित दुर्गा (Living Durga,) श्री माँ सारदा की साक्षात् उपस्थिति में मठ की पहली दुर्गापूजा सजीव हो उठी।[12] सुना जाता है कि स्वामीजी ने स्वयं दुर्गामण्डप में श्री माँ सारदा की पूजा की थी। भक्तगण भी श्रीरामकृष्णदेव के साक्षात् शिष्यगण – स्वामीजी, स्वामी ब्रह्मानन्द, प्रेमानन्द, अद्भुतानन्द, सारदानन्द आदि के पुण्य सग पाकर आनन्दित हुए।

स्वामी ब्रह्मानन्द ने कुशलता पूर्वक इस समारोह का संचालन किया। ब्र० कृष्णलाल एवं तान्त्रिक पूजा में सुदक्ष, धर्मपरायण ब्राह्मण ईश्वरचन्द्र चक्रवर्ती (स्वामी रामकृष्णानन्दजी के पिता) इस पूजा में क्रमशः पूजक एवं तन्त्रधारक हुए थे।[13]

इस प्रथम दुर्गापूजा की संबद्ध तिथियाँ इस प्रकार थीं : षष्ठी—शुक्रवार, १८ अक्टूबर, १९०१ (प्रथम कार्तिक, १३०८ बं०सं०) सप्तमी – शनिवार १९ अक्टूबर (द्वि० का०); अष्टमी—रविवार, २० अक्टूबर, (तृ०का०), नवमी – सोमवार, २१ अक्टूबर (च० का०) एवं दशमी – मंगलवार, २३ अक्टूबर (पं० का)[14]

संकल्प माँ सारदा के नाम से किया गया। स्वामीजी बोले—"हम सभी अकिंचन भिक्षुक हैं; हमलोगों के नाम से पूजा नहीं हो सकती।[15] इसके अतिरिक्त संन्यासियों को किसी प्रकार के शास्त्रीय कर्मकाण्ड में अधिकार नहीं है। इस प्रथा का अनुपालन अभी भी किया जाता है। बिल्व वृक्ष (वर्तमान स्वामीजी स्मृति मन्दिर के निकट) के नीचे षष्ठी दिन 'अधिवास' बोधन, 'आमंत्रण' कृत्य किये गये थे। उसी बिल्व वृक्ष के नीचे एक दिन स्वामीजी ने यह भजन गाया था :

बिल्ववृक्ष मूले पातिये बोधन,
गणेशेर कल्याणे गौरीर आगमन।
और उस दिन कामना पूरी हुई।[16]

माँ सारदा के इच्छानुसार कोई पशुबलि नहीं दी गया। इसके विकल्प में माँ दुर्गा के दोनों ओर चीनी एवं मिठाई का अम्बार स्तूपाकार सजाया गया।[17] सप्तमी की रात स्वामीजी ज्वराक्रान्त हो गये। इस कारण अगले दिन प्रातः कालिक पूजा में वे सम्मिलित नहीं हो सके। परन्तु सन्धि पूजन के क्षण वे अपने कक्ष से नीचे उत्तर आये एवं मण्डप में जाकर तीन बार पुष्पांजलि अर्पित की। सन्धि पूजा ६ बजकर १७ मिनट एवं २९ सेकेण्ड पर आरम्भ हुई तथा दूसरे दिन २० अक्टूबर को ७ बजकर ५ मिनट एव २९ सेकण्ड पर समाप्त हुई।[18]

अष्टमी तिथि को कुमारी पूजा हुई। स्वामीजी के अनुरोध पर श्रीरामकृष्णदेव की महिला भक्त गौरी माँ ने इस पूजा की व्यवस्था की। स्वामीजी ने स्वयं आसन, अर्घ्य, शंख, वलय, वस्त्र आदि द्वारा कुमारी के रूप में नौ बालिकाओ की पूजा की। उन्होंने तीन बार कुमारियों के चरणों में पुष्पांजलि अर्पित की और उनके हाथों में मिठाइयाँ एवं दक्षिणाएँ दीं। उन सभी कुमारियों को साष्टांग प्रणाम किया। कुमारियों में एक अत्यन्त छोटी बालिका थी और स्वामीजी जगन्माता के ध्यान में इतने लीन हो गये थे कि उसके ललाट पर रक्त चन्दन का टीका लगाने के समय वे चौंक उठे और उसी क्षण बोले – "आह, माँ के तृतीय नेत्र में कोई क्षत है क्या? श्री रामकृष्णदेव के भतीजा रामलाल दादा की सबसे छोटी कन्या 'राधारानी' कुमारियों में एक थीं।[19]

नवमी की रात स्वामीजीने दुर्गा मण्डप में कुछ ऐसे भजन गाये, जिन्हें इस तरह के अवसरों पर श्रीरामकृष्णदेव गाया करते थे।[20] एक दिन 'नल-दमयन्ती' नाम का यात्रा अभिनय हुआ।[21]

ढोलवादक एवं शहनाईवादक बीच बीच में मधुर समारोही संगीत की तान छेड़ते थे।[22] विजया दशमी के दिन गंगा में प्रतिमा की विसर्जन किया गया। प्रतिमा विसर्जन के समय स्वामी ब्रह्मानन्द बालक की तरह नाच रहे थे और दुमंजिले से स्वामीजी एव स्वामी प्रेमानन्द इस दृश्य का आनन्द ले रहे थे।[23] पूजा की समाप्ति पर स्वामीजी ने माँ श्री सारदा देवी के हाथों तन्त्रधारक को २५ रुपये दक्षिणा दिलवाये।[24] माँ पूजादि कृत्य देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं और बोलीं —'यहाँ प्रतिवर्ष माँ दुर्गा आयेंगी।'[25] संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियों को आशीर्वाद देकर वे अपने कलकत्ता निवास स्थल को लौट गयीं।[26]

१२ नवम्बर १९०१ को भगिनी निवेदिता एवं भगिनी क्रिस्टीन को लिखे पत्रों में अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए स्वामीजी ने लिखा— 'दुर्गापूजा से मैं बीमार हूँ। इसीलिए, तुम्हारे पत्र का जवाब पहले नहीं दे सका। चार दिनों तक माँ दुर्गा की शानदार पूजा यहाँ हुई, किन्तु दुर्भाग्यवश उस समय मैं ज्वर से पीड़ित था। मूर्ति बहुत ही सुन्दर थी तथा वृहत् पूजा हुई थी। दसभुजा दुर्गा की मृण्मयी मूर्ति हमलोगों ने लायी थी। माँ का एक पैर सिंह के ऊपर तथा दूसरा पैर असुर के ऊपर था।[27] माँ के दोनों पार्श्व में उनकी दो कन्याएँ धनदेवी तथा विद्या देवी कमलासन पर विराजमान थीं एवं उनके दो पुत्र युद्धदेवता एवं बुद्धि देवता नीचे थे।[28] ·· ····· हजारों लोगों का स्वागत किया गया।''

दक्षिणेश्वर, उत्तरपाड़ा, बेलुड़ एवं बाली के बहुसंख्यक सनातनपंथी ब्राह्मण एवं पण्डितगण इस पूजनोत्सव के समय आमन्त्रित किये गये थे। उनलोगों ने पूजन समारोह देखा एवं सभी प्रीतिभोज में सम्मिलित हुए। दरिद्र नारायण की सेवा इस उत्सव का एक प्रधान अंग था।[29] मठ प्रांगण के उत्तर पश्चिम भाग में वर्तमान कटहल वृक्ष एवं श्रीरामकृष्ण मन्दिर के मध्य स्थान में बैठकर भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया।[30] ऊँच-नीच का भेदभाव किए बिना, संन्यासीगण सभी का हार्दिक स्वागत एव अतिथि सत्कार किए। पूजा समारोह के दिनों मठ में अखण्ड आनन्द एवं परम हर्षोत्साह का भाव व्याप्त रहा। इस पूजा में १४०० रु० व्यय हुए।[30]

एक बात उल्लेखनीय है कि १९०२ ई० से लेकर १९११ ई० तक मठ में कलश स्थापित कर पूजा हुई। १९१२ ई० से मूर्ति स्थापित कर पूजा करने की व्यवस्था हुई, जब एक भक्त ने आवश्यक व्यय वहन करने का वचन दिया।[31]

यह परम्परा अभी भी चल रही है। प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में लोग दुर्गापूजा एवं अष्टमी की सुबह ९ बजे कुमारी पूजा देखने आते हैं। भक्त एवं दरिद्रनारायण के बीच खिचड़ी प्रसाद वितरण किया जाता है। स्वामीजी ने क्यों कुमारी पूजा प्रवर्तित की? मन में ऐसा प्रश्न उठ सकता है। श्रीरामकृष्ण देव ने भगवान के मातृ भाव की साधना की थी। जाति, धर्म एवं रंगभेद से निरपेक्ष उन्होंने प्रत्येक नारी में जगन्माता का दर्शन किया। उनके लिए मन्दिर की भवतारिणी माँ, अपनी जननी चन्द्रमणि देवी एवं अपनी लीला सहधर्मिणी श्री माँ सारदा एक समान थीं। श्रीरामकृष्ण देव ने और कहा — 'लोग क्यों कुमारी पूजन करते हैं? सभी नारियाँ भगवती का एक एक रूप है। परन्तु शुद्धात्मा कुमारियों में उसका सर्वाधिक प्रकाश है··· मैं कुमारियों में जगन्माता को देखता हूँ।[32] तुमने कुमारी पूजा देखी नहीं? मलमूत्र से सभी बालिका की पूजा क्यों की जाती है? कारण वह भगवती का एक रूप है।[3]

इसी मातृभाव के प्रचार के उद्देश्य से स्वामीजी ने कुमारी पूजा का प्रवर्तन किया अर्थात् जीवित बालिका के रूप में भगवती की पूजा। यह स्मरणीय है कि कन्याकुमारी में १८९२ ई० के क्रिसमस सप्ताह में स्वामीजी ने स्वयं मन्मथ

भट्टाचार्य (असिस्टेन्ट अँकाउन्टेनट जेनरल, मद्रास) की छोटी कन्या की पूजा जगन्माता के रूप में की थी।[34] १८९८ ई० के अगस्त महीने में काश्मीर भ्रमण के समय भी उन्होंने एक मुसलमान मांझी के चार वर्षीया कन्या की पूजा जगन्माता के रूप में की थी।[35]

साधारणतः कुमारी सुन्दर रूपरंग की कन्या होती है और उसे किसी दीक्षित ब्राह्मण भक्त की कन्या होनी चाहिए। यह आवश्यक है कि कुमारी की आयु ३ से ६ वर्ष के भीतर हो। मठ के अधिकारी वर्ग उनका चयन करते हैं। शास्त्र में कुमारियों का नामकरण उनकी आयु के अनुसार किया गया है। जैसे—एक वर्ष की कुमारी संध्या' कहलाती है, दो वर्षीया 'सरस्वती', तीन वर्षीया 'त्रिद्यामूर्ति' आदि। पूजाविधि किसी भी देवी के षोडषोपचार पूजा की तरह ही है।[36]

संदर्भ-तालिका

१. फॉर सीकर्स ऑफ गॉड, शिवानन्दजी के आध्यात्मिक वार्तालाप, स्वामी विविदिशानन्द एवं स्वामी गंभीरानन्दजी द्वारा अनुवादित, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता (पं सं — १९८५, पृ. सं.-१२९)

२. दि लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द प्राच्य और पाश्चात्य शिष्यगण कृत खण्ड-२, प. सं.-१९८१, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता पृ. सं.-६०४ (इसके बाद केवल लाइफ)

३. स्वामी गंभीरानन्द कृत युगनायक विवेकानन्द (बंगला) खण्ड-३ (प्र. सं.-फाल्गुन-१३७३ बं. सं.) उद्बोधन ऑफिस, कलकत्ता, पृ. सं.-४०० (इसके बाद केवल युगनायक)

४. दि कम्पलीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, खण्ड-६, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता (नवम पुर्नमुद्रण, १९७९) पृ. सं -२३७-३८ (इसके बाद केवल क. व.)

५. लाइफ : पृ. सं -६०६

६. वही, पृ. सं.-६०६

८. श्री श्री लाटू महाराजेर स्मृति कथा (बंगला) चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय कृत, उद्बोधन ऑफिस, कलकत्ता (तृ. सं.-१३८३, बं सं.) पृ. सं.-२८३

९. लाइफ के अनुसार षष्ठी तिथि १७ अक्टूबर, १९०१ को पड़ती है। (पृ. सं -६०६) परन्तु यु. ना. (पृ. सं.-४००) एवं शैलेन्द्र नाथ घर की पुस्तक 'ए कॉम्प्रिहेनसिव बाइओग्राफी ऑफ स्वामी विवेकानन्द (खण्ड-२, प्र. सं -१९७६) विवेकानन्द प्रकाशन केन्द्र, मद्रास, पृ सं.-१३९०, इसके बाद केवल बाइओग्राफी के अनुसार षष्ठी तिथि की सही तारीख १८ अक्टूबर, १९०१ है। लाइफ की तारीख सही नहीं है। मैंने १९०१ की षष्ठी तिथि की तारीख गुप्त प्रेस के पंचांग में देखी। यह १८ अक्टूबर है। मैंने १९०१ ई का विशद्ध पंचांग भी देखा। इसमें षष्टी १९ अक्टूबर को है। रामकृष्ण संघ में विशुद्ध पंचांग का प्रचलन १८४८ से हुआ है। इसलिए पहली दुर्गा पूजा गुप्त प्रेस के पचांग के अनुसार ही हुई और यह तिथि १७ अक्तूबर नहीं हो सकती जैसा कि 'लाइफ' में वर्णित है। यह निश्चय ही १८ अक्तूबर होनी चाहिए।

१०. 'ए ब्रिज टू इटरनिटी, श्रीरामकृष्ण एण्ड हिज मजेस्टिक ऑर्डर, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता (प्र. सं.-१९८६) पृ ५१७-१८ (इसके बाद केवल इटरनिटी) यद्यपि स्वामी अभयानन्द व्यक्तिगत रूप से उपस्थित नहीं थे। वे निश्चय ही श्रीरामकृष्णदेव के साक्षात् शिष्यों से इस सम्बन्ध में सुने होंगे।

११. होली मदर श्री सारदा देवी, स्वामी गम्भीरानन्द कृत (पृ. खण्ड १९५५ श्री रामकृष्ण मठ मद्रास, पृ-११६ (इसके बाद केवल होली मदर)

१२. क. खण्ड ७ पृ सं.-४८५, १८९४ ई. में स्वामी जी ने अपने गुरुभ्राता स्वामी शिवानन्द को लिखा— बुढ़ापे के कारण निश्चय ही बाबूराम की माँ की मति मारी गयी, जो जीवित दुर्गा (श्रीमाँ सारदा देवी) की उपेक्षा करके मिट्टी की मूर्ति में दुर्गा पूजा करने जा रही है। केवल स्वामीजी ही नहीं वरन् सन्यासीगण ने भी श्रीमाँ सारदा के चरणों में पुष्पांजलि निवेदित की।

इस प्रकार के एक उत्सव में महाष्टमी के दिन स्वामी ब्रह्मानन्द ने एक सौ आठ पूर्ण स्फुटित कमल पुष्पों के द्वारा माँ के श्री चरणों की पूजा की। (होली मदर, पृ. सं.-२६५)

माँ सारदा स्वयं इस सम्बन्ध में बोलीं जब वे १९१४ ई० की दुर्गा पूजा के समय बेलुड़मठ आयी थीं, "सब कुछ सुन्दर ढंग से तयार है; मानो हुगलीगंज ही दुर्गा देवी की तरह सजधज कर आयी है।" (होली मदर पृ. सं.-२६३)

श्रीरामकृष्णदेव के महान् भक्त गिरीश चन्द्र घोष ने १९०७ ई. की दुर्गा पूजा के समय अपने निवास स्थल पर श्री माँ सारदा रूपिणी जीवित दुर्गा की पूजा की थी। गिरीश घोष के अनुरोध पर माँ सारदा जयराम वाटी से कलकत्ता आयीं। प्रथम दो दिन कई घण्टों तक लगातार होकर अगणित भक्तगण ने माँ के चरणों में पुष्पांजलि निवेदित की। वे अस्वस्थ हो गयीं। उन्होंने गिरीश को खबर भेजी कि वे सन्धि पूजा के समय नहीं आ सकेंगी। यह जानकर गिरीश घोष एवं अन्य लोग अत्यन्त उदास हो गये। परन्तु सन्धि पूजा के क्षण अपने स्वास्थ्य की परवाह किये बिना माँ अपनी महिला सहचारियों के साथ गिरीश के घर आ उपस्थित हुईं। जिस समय माँ देवी मूर्ति पर दृष्टि टिकाये उत्तर-पश्चिम कोने में खड़ी हुईं उस समय भक्तों ने पास आकर माँ के श्री चरणों में पुष्पांजलि अर्पित की। (होली मदर, पृ. सं.-२२३)

बेलुड़ मठ में स्वामी सारदानन्द ने एक ब्रह्मचारी से कहा —"माँ उस उद्यान भवन में हैं (वर्तमान लेगेट हाउस) जाओ सोने का सिक्का उनके श्री चरणों में अर्पित कर प्रणाम कर आओ। उन्हीं की पूजा यहाँ हो रही है।" (होली मदर, पृ. सं.-२६६)

१३. लाइफ, पृ. सं.-६०६

१४. बाइओग्राफी, पृ. सं.-१३९०, इस पुस्तक के लेखक बांगला वर्ष १३०९ निश्चित करते हैं। यह सही नहीं है। यह १३०८ होना चाहिये (गुप्ता प्रेस एवं विशुद्ध सिद्धांत पंचांग यह प्रमाण पेश करते हैं। स्वामी गम्भीरानन्द लिखित माँ सारदा देवी (बंगला) पुस्तक देखें। (पं. सं.-१३८१, बं. सं. उद्बोधन ऑफिस, कलकत्ता, पृ. सं. ६०४)

१५. होली मदर, पृ. सं.-१९८

१६. युगनायक वॉ-३, पृ. स.-४००

१७. स्वामी विवेकानन्द (बंगला) प्रमथनाथ बोस कृत, खण्ड-२, (नि. सं., १३६३ बं सं.) उद्बोधन ऑफिस, कलकत्ता, पृ. सं. ९१२

१८. लाइफ, पृ. सं.-६०७ एवं बाइओग्राफी पृ. सं.-१३९०

१९. सारदा-रामकृष्ण, श्री दुर्गापुरी देवी कृत पृ. सं.-१३४
श्री श्री सारदोखटी आश्रम, कलकत्ता, पृ. सं.-२०४-०५

२०. लाइफ, पृ. सं.-६०७

२१. इटरनिटी पृ. सं.-११४

२२. लाइफ वॉ— ४ (पुराना सं.-१९१४) पृ.-३०

२३. ब्रह्मानन्द चरित (बंगला) स्वामी प्रभानन्दकृत (प्र. सं.-१९८२) उद्बोधन ऑफिस, कलकत्ता, पृ. सं.-१७३,
२४. होली मदर, पृ. सं. १९७
२५. लाइफ, पृ. सं.-६०७
२६-२७. लाइफ, पृ सं -६०९
२८. लाइफ, पृ. सं.-६०६-०७
२९. इटरनिटी, पृ सं -५१४
३०. श्री 'म' दर्शन, स्वामी नित्यानन्दकृत, खण्ड—३
पृ. सं.१३७२, बं. सं.) जेनरल प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशिंग (प्रा. लि., कलकत्ता) पृ. सं.६०
३१. वही पृ. सं.-५१४, परन्तु द्वितीय विश्व युद्ध एवं दुर्भिक्ष के कारण भी १९४० से १९४३ पर्यन्त बेलुड़मठ में बिना मूर्ति स्थापित किये दुर्गापूजा हुई थी।
३२-३३. दि गॉस्पेल ऑफ श्रीरामकृष्ण, निखिलानन्द कृत अंग्रेजी अनुवाद (१९४२) रामकृष्ण विवेकानन्द सेन्टर, न्यूयार्क, यू. एस ए. पृ. सं -३९३ एवं ५९२
३४. लाइफ, वॉ.-१ पे. सं.-१९७९; पृ. सं -३४०
३५. लाइफ, पृ. सं.-३७८
३६. पुरोहित दर्पण—पंडित सुरेन्द्र मोहन भट्टाचार्य द्वारा संकलित (१३६३) कलकत्ता, पृ. सं.-३०९।

●

कविता

धूल भरी यह पृथ्वी

—स्वामी पूर्वानन्द

[स्वामी पूर्वानन्द कृत 'युनिवर्सल इम्परेटिव्स, ऑफ द भगवत गीता' के पृष्ठ १३ के आधार पर रामकृष्ण मिशन पटना में कार्यरत स्वामी अमलेशानन्द रचित बंगला कविता 'तुच्छ धूलिर एइ पृथिवी' का अनुवाद। अनुवादक—डॉ० केदार नाथ लाभ]

ईश्वर को अर्पित करो धन्यवाद
हे दुःखी अतृप्त अज्ञ मानव
ईश्वर को अर्पित करो कृतज्ञता
क्योंकि उन्होंने जगत का सृजन किया है
इसीलिए।
शुभ अथवा अशुभ कर्मों का फल
सत्य की जय और असत्य की पराजय
यहीं घटित होती है, इसी धरा धाम में।
कष्टसाध्य व्रत और समर्पण के दिव्य फल
आज भी फलते हैं इस मर्त्यभुवन में।

सद्भाव यहाँ व्यर्थ नहीं जाते
और पाप का फल भी अवश्यमेव मिलता है;
आज भी वृक्षों में खिलते हैं फूल
पकते हैं फल, बीज अंकुरित होते हैं
माटी के मंजुल वक्ष में।
धर्म के सुफल और अधर्म के कुफल से
आज भी कोई बच नहीं पाता;
न्याय चक्र का होता है पूर्ण आवर्तन
कहीं भी, रंच मात्र भी नहीं रुकता है।
अहंकारी का उद्धत शिर नत होता है
दुर्विचार का होता है प्रतिकार;
सत्य की जय और असत्य की पराजय
आज भी निश्चित है इस मर्त्यभूमि में।
घृणा के पाप से छुटकारा नहीं, प्रेम का पराभव नहीं
प्रकाश का ह्रास और अंधकार का त्रास
आज भी इस दुनिया में घटित होता है।
आँसू हैं, रक्त है—
उस रक्त का रंग लाल है
मत-मतान्तर भरी बुद्धि—यह भी है,
बसती कुटिल हृदय में।
प्रार्थना का उत्तर मिलता है
गरीबों के हैं दीनानाथ
घाव की पीड़ा के आँसू पोंछने
हैं आज भी अदृश्य अभय हाथ।
मृत्यु है, पुनर्जन्म है और है दर्शन—
हाँ-हाँ ईश्वर दर्शन अथवा जीवनमुक्ति—
यह भी घटित होती है इसी धूलि भरी पृथ्वी पर
आकाश के नीचे।
कार्य और कारण की ऐसी निर्दोष शृंखला
और कहाँ पाओगे ?
कहाँ पाओगे हे मूर्ख मानव
और एक सुन्दरतर पृथ्वी
जहाँ है—
बीज-वपन और फल आहरण का
ऐसा स्वर्गीय सिहरण।

क्षुरस्य-धारा-३

लेखक—स्वामी त्यागानन्द
रामकृष्ण मठ, मद्रास
अनुवादक—ब्र० रवीन्द्र
रामकृष्ण मिशन
अलांग (अरुणाचल प्रदेश)

प्रस्तावना : हिमालय की एक गुफा के चारों ओर की अलौकिक सुन्दरता से आकर्षित हो, नारद ने वहाँ अपना आसन जमाया तथा गम्भीर एवं सुदीर्घ समाधि में डूब गये। कामदेव, जिसे इन्द्र ने नारद की तपस्या में बिघ्न उत्पन्न करने हेतु भेजा था, अपने प्रयत्नों में असफल रहा। वह नारद के मन को काम-क्रोध से कलुषित नहीं कर पाया। नारद ने उसे क्षमा किया। अपने प्रिय भक्त की रक्षा हेतु सर्वत्र ही इस घटना को श्रीहरि की ही विजय के रूप में मनाया जा रहा था। गर्व से फूले नारद को अपनी महिमा का प्रचार करने की तृष्णा ने घेरा। उसने उस घटना को शिवजी के समीप वर्णित किया। शिवजी ने अन्य किसी के समक्ष उसे दोहराने के लिए नारद को सावधान किया। नारद ने तत्काल निष्कर्ष निकाला कि शिवजी उनसे ईर्ष्या करते हैं। तत्पश्चात् वे वैकुण्ठ गए। वहाँ भी, पूर्ववत् उन्होंने अपनी विजय-कथा प्रभु के समक्ष कही। नारद के मस्तिष्क में अब जरा भी शंका नहीं थी कि वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं, शिवजी एवं श्रीहरि से श्रेष्ठतर। प्रभुमुस्कुराए। वे समस्या को समझ गये एवं उन्होंने अपने भक्त को उचित मार्ग प ले आने की उक्ति सोच निकाली।

कैलाश और वैकुण्ठ में अपने ही नाम का डंका पीटने के बाद नारद को ऐसा लगा कि वह समय आ गया है जबकि विश्व-भ्रमण कर इस बात का सर्वत्र प्रचार किया जाए। अब जब वे कीर्ति की पराकाष्ठा को उपलब्ध कर ही चुके हैं, तो उन्होंने सोचा कि यह उनका कर्त्तव्य है कि सर्वत्र घूमकर यह देखा जाए कि कहाँ उनकी मदद की आवश्यकता है। इसके पहले भी नारद लोगों की सहायता करते थे, परन्तु तब वे श्रीहरि के दूत हुआ करते थे। हालांकि, अब, उनमें काफी परिवर्तन हो गया था। अब वे स्वयं नारद थे जो सहायता प्रदान कर लोगों को दुःखों से त्राण पहुँचाने जा रहे थे। वे अब श्रीहरि के प्रतिनिधि कदापि नहीं थे। प्रतिनिधित्व तो वे स्वयं अपना ही कर रहे थे। भला, किस तरह के व्यक्तित्व का वे प्रतिनित्व कर रहे थे। एक ऐसा व्यक्तित्व जो अहंकार, खोखलेपन एवं दम्भ की सारी सीमाओं को पार कर चुका है। जब कोई व्यक्ति ऐसे व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है, तो परिणामतः ऐसे व्यक्ति एवं उस व्यक्ति पर निर्भर रहने वाले अन्यान्य लोगों के पक्ष में सिर्फ दुःख ही आता है। हालांकि, नारद प्रभु के एक सच्चे भक्त थे। उनके जीवन में वर्तमान अवस्था तो केवल एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना विशेष थी। 'सद्कर्म करने वाले की कदापि दुर्गति नहीं होती'[1] भगवान् श्रीकृष्ण ने इस बात को प्रतिज्ञा-पूर्वक कहा है (६.४०)। हाँ, भगवान् अपने प्रिय भक्त को कभी दुःखी नहीं होने देते। वे रक्षा करते ही हैं। इस तरह श्रीहरि की दिव्य योजना का सूत्रपात होता है अपने प्रिय भक्त नारद को अध्यात्मिक अवनति से बचाने हेतु।

नारद जिस मार्ग पर अग्रसर हो रहे थे, वहाँ अकस्मात् एक विलक्षण, स्वर्णमय राज्य प्रकट हो जाता है। नारद इस स्थान को देखकर आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। वे इस विश्व-ब्रह्माण्ड का

१. न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति। गीता—(६.४०)

यहाँ हम मानवी जीवन के एक नये पहलू को देखते हैं। कुछ काल पहले नारद ने ही श्रीहरि को नीचा कर देखा था एवं अपने आपको उनसे उच्च पाया था। अब वही नारद वैकुण्ठ को चले थे प्रभु से याचना करने हेतु। प्रभु से यह कहने के लिए कि वे उनपर कितने दयालु हैं। क्या ऐसा ही अनेक लोग नहीं किया करते? सफलता एवं कीर्ति के स्थलों में वे स्व-प्रयत्न का हवाला देते हैं, परन्तु दुर्दिनों में उनमें एक विलक्षण आत्मसमर्पण का भाव आ जाता है एवं वे घोषित करते हैं कि प्रभु की दया बिना कुछ भी उपलब्ध नहीं किया जा सकता। जीवन के इस वैषम्य से हम भली-भाँति परिचित हैं। नारद के जीवन में भी हम ऐसा विरोधाभास देखते हैं।

प्रभु, जिनके लिए कुछ भी अनजाना नहीं है, अब नारद के समक्ष उपस्थित होते हैं जब वे वैकुण्ठ की ओर शीघ्रता से बढ़े जा रहे थे। प्रभु ने पूछा, 'पुत्र, तुम कहाँ जा रहे हो? कुछ अस्वस्थ भी दीख पड़ते हो। नारद अकस्मात प्रभु के चरणों पर गिर पड़े एवं दीनतापूर्वक कहा, हे प्रभु। कृपया आप मुझे अपना सौन्दर्य दे दीजिए। मुझे उसकी अति-आवश्यकता है। मैं आपका भक्तिमान सेवक हूँ एवम् आपने सदैव ही मेरा शुभ ही विचारा है। मैं जानता हूँ आप वही करेंगे जिससे मेरा कल्याण होगा।'

प्रभु मुस्कराए। हाँ, वे तो वही करेंगे जिससे नारद का कल्याण होगा। 'तथास्तु'! प्रभु ने वर दिया एवं नारद एक बार पुनः उनके श्रीरणों में प्रणिपात हुए। प्रभु ने मृदु स्वर में कहा, यदि कोई रोगी वैद्य से गलत दवा के लिए आग्रह करे तो क्या वैद्य भी कहीं उसे वह दे देता है? वैद्य हमेशा रोगी के उपयुक्त ही दवा देता है। यदि नारद ने ये उद्-गार सुने होते तो वे सावधान हुए होते। परन्तु प्रभु के 'तथास्तु' कहते ही उनका मस्तिष्क पुनः विश्व-मोहिनी, वह स्वयंवर स्थान तथा राजकुमारी का उन्हें पतिरूप से वरण करने के विचारों में भटक गया। प्रभु की सावधान-वाणी को सुनने की भला नारद क्या परवाह करते!

ऐसा भी अनेक लोग करते पाए जाते हैं। हम अक्सर 'चुनाववादी' बन जाते हैं एवं उसी वस्तु को चुन लेते हैं जो हमारे लिए सुविधाजनक हो एवम् हमारी वासनाओं की पूर्ति में सहायक हो। जबकि उन वस्तुओं को दुर्लक्ष्य करते हैं जो असुविधाजनक हो। यह 'सुविधावाद का दर्शन है' वर्तमान समय का विष है। विशेषकर आध्यात्म-मार्ग में नये जिज्ञासु को इस 'असुविधाजनक' वस्तुओं से ही प्रेम करना चाहिए। सुबह जल्दी उठना, नियमित प्रार्थना, पूजा, ध्यान, शास्त्राध्ययन ये सभी 'असुविधाजनक' होते हैं जो इस तरह जीने का अभ्यस्त न हो। परन्तु उसका क्या होगा यदि, वह इनकी ओर दुर्लक्ष्य करे इसीलिए कि वे 'असुविधाजनक हैं? यद्यपि, अनेक स्थलों में यह पूर्णतया ज्ञात प्रक्रिया भी नहीं रहती। मानवी मस्तिष्क के पास अद्भुत वस्तु का भी स्पष्टीकरण देने की अद्भुत क्षमता होती है। ऐसे मष्तिष्क पर विश्वास करना भी भयावह है जिसने काँटे को काँटा कहना नहीं सीखा। यहाँ ही सतत सावधान रहने की आवश्यकता है, यह पक्का करने के लिए कि कहीं असुविधाजनक वस्तुओं से बचाने हेतु पलायन तो नहीं हो रहा है। सदैव जागरूकता ही मुक्ति पथ खोलती है। यह कितना सत्य है! परन्तु नारद का राजकुमारी के प्रति मोह अत्यधिक प्रबल था। उनका मस्तिष्क ही उनका शत्रु हो गया था। वह तो प्रभु की सम्पत्ति पा फौरन राजकुमारी के विचार में मग्न हो गया। यह सन्तोष करते हुए कि प्रभु ने उनकी प्राथना सुन ली है एवम् उनका प्रयोजन सार्थक हो गया है नारद ने सीधे स्वयंवर स्थल पर धावा बोल दिया। जिस चीज को वे नहीं जान सके वह यह थी कि प्रभु ने सच्चे वैद्य की नाईं उन्हें उचित औषधि दी थी न कि जहर जिसके लिए नारद ने याचना की थी।

प्रभु ने उन्हें ऐसा क्या दिया था? नारद को

प्रभु का अतुल सौन्दर्य चाहिए था। प्रभु ने उन्हें बन्दर का मुखौटा दिया था। कुछ दुष्ट-सा लगता है। परन्तु, ऐसा होना नहीं चाहिए। प्रभु श्रीहरि ने उन्हें जो भी दिया था वह नारद के हित में था, जैसा अब हम देखेंगे।

इसके अलावा, प्रभु का सौन्दर्य तो केवल उनके वैकुण्ठ वाले रूप में ही सीमित तो नहीं है। उनका सौन्दर्य तो विश्व-ब्रह्माण्ड की प्रत्येक छोटी-बड़ी वस्तुओं में विद्यमान है, क्योंकि वे तो प्रभु ही हैं जिन्होंने ब्रह्माण्ड की सृष्टि कर उसकी हर एक वस्तु में अपने आपको ओत-प्रोत कर रखा है।[5]

प्रभु श्रीरामकृष्ण एक बार एक भक्त से कहते हैं—'एक ऐसा भी समय था जब मैं भी इश्वर का ध्यान आँखें मूँद कर किया करता था। फिर मैंने अपने आपसे कहा, 'क्या ईश्वर का अस्तित्व तभी है जब तक मैं आँखें मूँदकर उनका चिन्तन करूँ? क्या वे मेरे चारों ओर विद्यमान नहीं रहते, जबकि मेरी आँखें खुली हों? अब जब मैं चारो ओर निहारता हूँ तो पाता हूँ कि वे ही सबमें बसे हैं। वे ही सबकी आत्मा हैं—मनुष्य, जानवर तथा इतरेतर प्राणियों में, पेड़-पौधों में, सूर्य-चन्द्र में, धरती-जल में।''

प्रभु हर वस्तु में दृष्टिगोचर होते हैं, बशर्ते हमारे पास उन्हें देखने वाली आँखें हों। परन्तु यह भी सत्य है कि हरएक वस्तुमात्र में प्रभु के सौन्दर्य का दर्शन करना एक उच्च आध्यात्मिक अवस्था-विशेष है जो बिरले अधिकारियों का प्राप्त होती है। निश्चय ही, नारद उस अवस्था के कहीं नजदीक भी नहीं थे, वर्तमान परिस्थिति में। जब उन्होंने प्रभु के रूप के लिए याचना की थी तो उनका तात्पर्य प्रभु के वैकुण्ठ रूप से ही था।

क्यों प्रभु ने उन्हें बन्दर का रूप देना ही पसन्द किया? ऐसा प्रतीत होता है कि प्रभु उसे ही उजागर करना चाहते थे जो कि भीतर पहले से विद्यमान था। प्राणियों में बन्दर में ही कामुक प्रवृत्ति प्रबलतम हुआ करती है। ये प्रवृत्तियाँ जो नारद के सुषुप्त मस्तिष्क में घर कर बैठी थीं, प्रभु उन्हें उजागर कर नारद को उन्हें दिखलाना चाहते थे। नारद तो आन्तरिक रूप से बन्दर ही बन गये थे। प्रभु ने तो बस इतना ही किया कि उस बन्दर को बाहर निकाल डाला। तुम्हारे पड़ाव में शत्रु की उपस्थिति बुरी एवं अनिष्टकारी है परन्तु इस शत्रु की उपस्थिति के विषय में अनभिज्ञता बदतर होती है। बाधाएँ एवं मुसीबतों को आध्यात्मिक मार्ग में टाला नहीं जा सकता। परन्तु उनपर बिजय प्राप्त करने के पूर्व, तुम्हें उनकी जानकारी तो होनी चाहिए। अधिकांश मुमुक्षुओं के साथ मुसीबत यह है कि वे इन मनोवैज्ञानिक बाधाओं के विषय में सर्वथा अनजान रहते हैं जो उनकी आध्यात्मिक प्रगति अवरुद्ध कर देती हैं क्योंकि ये बाधाएँ उनके सुप्त मस्तिष्क में जमा रहती हैं। अधिकतर स्थलों में साधक अपने स्वभाव के परवश हुआ असहाय बहा चला जाता है,[6] एवं उसका अपने विचारों एवं कृति पर कोई नियन्त्रण नहीं रह पाता।

आचार-नियम (जैसे बौद्धों में विपासना), ध्यान आदि अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं, अपने आप पर नियन्त्रण करने हेतु एवं मस्तिष्क की जांच कर उसको विषयवस्तु की खोज लेने हेतु।

इन सब के अलावा, आत्म-परिक्षण को बिना चुके अपनी आध्यात्मिक साधना का अंग बना लेता है।

अपनी त्रुटियों को जान लेना बड़ी बात है, उनसे छुटकारा पा लेना उसके आगे का कदम है। बहुत सी घटनाओं में गुरु स्वयं शिष्यों के कल्याणार्थ

---

५. तत् सृष्ट्वा तदेव अनुप्राविशत
—तैत्तरीयोपनिषद् २.६.१

६. सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥
गीता-३-३३

यह काम कर देते हैं। वे शिष्य की सुप्त, दबी ग्रन्थियों एवं वासनाओं को उजागर कर देते हैं एवं उनसे जूझने का उपाय भी उसे बता देते हैं। इसी आदर्श एवं नियम का अनेकों तान्त्रिक साधनाओं में उपयोग किया जाता है।

यही प्रभु ने भी किया। कामरूप-दैत्य जो नारद के भीतर छिपा था, प्रभु के द्वारा बाहर निकाल दिया गया ताकि नारद उसे जान सके। जो भी हो नारद के चेहरे ने बन्दर रूप धारण कर लिया था, परन्तु उन्होंने आईने में अपना चेहरा देखने की परवाह नहीं की। एक ओर, नारद राजकुमारी के विचार में निमग्न थे तो दूसरी ओर, प्रभु भी शायद नारद को जता देना न चाहते हों, जबकि उपयुक्त समय आने में अभी देर थी। दरअसल, सही वक्त तो अभी आया भी नहीं था।

तो, नारद अब स्वयंवर समारोह की ओर अग्रसर होते हैं पूरी तरह सन्तुष्ट होकर कि बस अब कुछ घण्टों की बात है जबकि राजकुमारी को पाने का उनका प्रयोजन सिद्ध होने ही वाला है।

यह कितनी अवनतिकारक बात है कि नारद जैसे महान् देवर्षि प्रभु के पास जाकर ऐसी तुच्छ वस्तु हेतु प्रभु के सौन्दर्य की भिक्षा-याचना करें। परन्तु हम देखते हैं कि क्योंकि वे अन्य किसी के पास न जाकर प्रभु के पास ही इस तुच्छ वस्तु के लिए गये, अन्ततः प्रभु की दया से बचा लिए गये। यह कल्पना भी कठिन है कि यदि प्रभु की सहायता के अलावा वे अन्य कोई संसारी चाल चलते तो उनका क्या हुआ होता? हो सकता है, वे अपने आपको नष्ट कर चुके होते। यह बात हमें जीवन के एक बड़े सत्य से परिचित करवाती है कि हमें सदैव प्रभु की ही शरणागति रखनी चाहिए। तुम्हारी इच्छाएँ कितनी भी सांसारिक क्यों न हों, उसकी पूर्ति हेतु प्रभु से ही प्रार्थना करनी चाहिए बजाए किसी संसारी तरीकों को अपनाने के।

इसी वजह से शास्त्रों में सकाम-भक्ति (कामना सहित भक्ति) को पूर्णतया निषिद्ध नहीं किया गया है। यह सत्य है कि सकाम-भक्ति, निष्काम-भक्ति (इच्छा-वासना रहित भक्ति) से निम्नतर है, फिर भी सकाम-भक्ति पूर्णतया निष्प्रयोजन नहीं हुआ करती। यहाँ यह स्मरण रखना उचित ही है कि प्रभु ने ऐसे लोगों को भी आश्रय दिया है जबकि वे गीता (७-१६) में चार वर्गों के लोगों का वर्णन करते हैं, जो उन्हें भजते हैं।[7]

हालांकि, यह सत्य ही है कि सकाम भक्ति गौण ही है क्योंकि भक्ति मुख्यतः ईश्वर पर अनुराग ही है। दूसरे शब्दों में, ईश्वर-लाभ ही एक सच्चे भक्त का उद्देश्य होता है। सकाम-भक्ति में भक्त स्वयं अपने सुख को ही उद्देश्य बनाता है (अपनी वासनाओं की पूर्ति हेतु) तथा प्रभु तो उस उद्देश्य की पूर्ति में केवल एक माध्यम होता है। स्पष्ट शब्दों में कहें तो ऐसा व्यक्ति यथार्थतः स्वयं अपना ही भक्त होता है, प्रभु का तो कदापि नहीं। भक्तियोग पर अपने प्रवचनों में स्वामी विवेकानन्द यह स्पष्ट कर कहते हैं कि सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति हेतु प्रार्थना भक्ति कदापि नहीं हुआ करती। वे कहते हैं,[8] "ये सब कर्म हैं अथवा महत् कार्य ··· जो प्रभु से प्रेम करना चाहे, जो भक्त बनना चाहे, उसे ऐसी प्रार्थनाओं का बहिष्कार करना चाहिए।"

प्रभु सम्राटों का सम्राट है। फिर क्यों मैं उनसे हीन-तुच्छ वस्तुओं के लिए प्रार्थना करूँ? वह मुझे नित्य मुक्ति एवं आनन्द दे सकते हैं, फिर क्यों मैं उन्हें नश्वर हीन सांसारिक वस्तुओं के लिए तंग करूँ? यही प्रवृत्ति एक सच्चा भक्त अपने में निर्माण करता है तथा समस्त सांसारिक प्रार्थनाओं

---

७. चतुर्विधा भजन्ते माम् जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥
(गीता ७-१६)

८. विवेकानन्द साहित्य।

को दूर रखता है। प्रभु उसके जीवन का एकमात्र ध्रुवतारा बन जाता है। वह प्रभु से प्रेम सिर्फ प्रेम करने के लिए करता है। उसके लिए प्रभु स्वयं उद्देश्य एवं उसकी प्राप्ति का साधन बन जाते हैं। परन्तु अपने चारों ओर दृष्टिपात कर देखो और तुम देखोगे कि ऐसे महात्मा बहुत थोड़े ही होते हैं। तो उन बहुसंख्यक लोगों की क्या गति होती है जो अपनी अनन्त वासनाओं से त्राण नहीं पा सकते? क्या वे इसकी पूर्ति के लिए प्रभु का आसरा लें अथवा किसी सांसारिक तरीकों का सहारा लें? ऐसे लोगों के लिए ही वेदान्त के आचार्य यह उपदेश देते हैं - ईश्वर केवल एक राजा एवं तुम उनके भृत्य ही नहीं हो। वे तुम्हारे पिता, तुम्हारी माता, तुम्हारे बन्धु एवं तुम्हारे प्रेमी भी हैं। एक राजा का बेटा अपने पिता से कुछ भी मांग सकता है, जीवन की अति साधारण वस्तु भी मांग सकता है। अतः जब भी कोई सांसारिक इच्छा भी हो तो प्रभु के पास जाना ही बेहतर है। दैवी कृपा प्राप्त करना एवं प्रभु के द्वारा इच्छाओं की पूर्ति करना सांसारिक किसी चालाकी से कई गुणा अच्छा है।

लोग कभी-कभी भ्रम में पड़ जाते हैं यह सुनकर कि वेदों में प्रार्थना एवं कर्मकाण्ड का ऐसा भाग भी है जिसके द्वारा सांसारिक कामनाओं की पूर्ति की जा सकती है। परन्तु इसमें शंका की कोई बात ही नहीं हो सकती। यथार्थ में, आश्चर्य तो तब होता था, जबकि ये चीजें वेदों में नहीं पायी जाती। शास्त्रों का मूल उद्देश्य आखिर क्या है! मनुष्य को सहायता प्रदान करना है। क्या कभी कोई शास्त्र बहुसंख्यक मानवजाति की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं के प्रति दुर्लक्ष्य करने की धृष्टता कर सकता है? दरअसल, सत्य वस्तु यह है कि मनुष्य इच्छाओं से बना है एवं वह उनकी पूर्ति करना चाहता है। यदि तुम उसे एक रास्ता दिखा नहीं देते, तो वह स्वयं अन्य एक मार्ग ढूंढ निकालेगा, एक ऐसा मार्ग जो भयानक एवं अनिष्टकारी ही होगा। यदि तुम्हें दो तरह के पापों या बुराइयों में से एक को चुनना आवश्यक है तो नीति कहती है कि कम अनुपात वाली बुराई को ही चुनो। इसीलिए शास्त्र मार्ग दिखाते हैं - प्रार्थना, कर्मकाण्ड, एवं तपस्या आदि—जिसके द्वारा तुम अपनी सर्वथा संसारी इच्छाओं की भी पूर्ति कर सकते हो। ये सब अनुष्ठान ऐसे हुआ करते हैं कि जो भी मनुष्य इन्हें अंगीकार करेगा तो उसे एक आत्म-संयम तथा पवित्रता के मार्ग से होकर जाना पड़ेगा, चाहे उद्देश्य कितना ही लौकिक क्यों न हो। निश्चय ही यह तरीका उस कर्म से बेहतर है जब 'खुली-छूट' वाले तत्व के अनुसार हर कोई बस अपनी ही खुशी से मतलब रखे, इसकी परवाह न करते हुए कि उसकी प्राप्ति में किसी अन्य को दुःख उठाने पड़ रहे हैं।

वेदों में सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा यह है कि वे तुम्हें केवल सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति करने हेतु अनुष्ठान करने को प्रेरित नहीं करते। वे केवल इतना घोषित करते हैं कि यदि तुम्हारे पास कोई इच्छा है तो उसे पूर्ण करने का तरीका इस प्रकार का है। वे ही शास्त्र दृढ़तापूर्वक यह भी दर्शाते हैं कि सभी लौकिक वासनाएँ, यद्यपि उनकी पूर्ति हो अथवा न हो, परिणामस्वरूप वे सभी दुःखों में समाप्त होती हैं। वेदों के जिस भाग में यह तथ्य बहुतायत में आता है 'ज्ञान-काण्ड' कहलाता है। विवेकी मस्तिष्क इसे समझ लेता है एव इन वासनाओं को त्यागने का प्रयत्न करता है। परन्तु, इतनी चेतावनियों के बावजूद—बेशक उन लोगों की ही संख्या अधिक है, जिनकी वासनाओं का कोई अन्त ही नहीं। अपने रोजमर्रा के उदाहरण को यहाँ उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा। सभी सिगरेट के पैकेट पर यह संवैधानिक चेतावनी छपी दीख पड़ती है कि—सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। ऐसे कितने हैं जो पढ़कर भी सिगरेट पीने से बाज आते हैं? यदि होंगे, तो भी उनकी संख्या अल्प ही होगी। परन्तु यह तथ्य

कि सिगरेटें बाजार में उपलब्ध हैं, क्या यह दर्शाता है कि तुम जाओ और पीओ, क्या ऐसा भी है ?

एक समय ऐसा भी आता है, हमारे आचार्य कहते हैं जब सकाम भक्ति सच्ची निष्काम भक्ति में परिणत हो जाती है । शीघ्र या देरी से, तुम्हारा विवेक जागृत हो ही जाता है एवं तुम समझ जाते हो कि सभी इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो सकती । तुम देखते ही हो कि जैसे ही एक इच्छा पूर्ण हुई कि नहीं, दस इच्छाएँ उसकी जगह आ उपस्थित हो जाती हैं । तुम यह भी देखते हो कि वासनाएँ तुम्हारी मनःशक्ति हर लेती है, तुम्हारी शारीरिक एवं बौद्धिक शक्तियों को नष्ट कर देती हैं एवं अन्ततः तुम्हें पूर्ववत् अपूर्ण एवं वैसे ही भूखे छोड़ जाती हैं । शनैः शनैः मस्तिष्क थक जाता है । तुम्हारे पूर्व संचित पवित्र कार्यों के परिणाम जो तुमने सकाम प्रार्थना, कर्मकाण्ड एवं तपस्या के जरिए किए थे, अब धीरे-धीरे दृष्टिगोचर होते है एवं तुम्हारे लिए एक मार्ग प्रशस्त करते हैं । तब तुम प्रभु से केवल प्रेम करने के लिए ही प्रेम करना आरम्भ करते हो ।

अतः यह सहज ही है कि तुम आध्यात्मिक अथवा लौकिक इच्छाओं की पूर्ति हेतु ईश्वर के ही समीप जाओ । यदि तुम्हें वह नहीं प्राप्त होता जिसकी तुम्हें आकांक्षा है तो इसे निश्चय ही जानो कि तुम उसकी प्राप्ति के योग्य ही नहीं थे अथवा उसकी प्राप्ति में तुम्हारा कुछ भी कल्याण नहीं था। जब तक तुम्हारे जीवन में ईश्वर होते हैं उन्हें तुम अपना ध्रुवतारा बना सकते हो यद्यपि जगत् तुम्हारी अंगुलियों के बीच से खिसक ही क्यों न जाए । परन्तु ईश्वर की पकड़ छोड़ो और तुम अपने आप से ही दूर चले जाओगे ।

निश्चय ही, यही एक ठीक बात है जो नारद ने की । उनकी इच्छा लौकिक थी, ठीक है, परन्तु उन्होंने उसकी पूर्ति हेतु श्रीहरि की शरण ली। उसकी रक्षा किस प्रकार की गयी यह अब हम अगले अंक में देखेंगे ।

(क्रमशः)

ग्राहकों से निवेदन

विवेक शिखा के कृपालु पाठकों को कष्ट के साथ सूचित करना पड़ता है कि कागज के मूल्य और छपाई की दर में अत्यधिक वृद्धि हो जाने के कारण १९९२ ई० में 'विवेक शिखा' का वार्षिक सदस्यता शुल्क ३० रुपये और आजीवन सदस्यता शुल्क ५०० रु० होगा । हमें विश्वास है कि हमारे पाठक बन्धु इस आर्थिक भार को वहन करने में हमारा साथ देने की कृपा करेंगे ।

निवेदक

व्यवस्थापक : विवेक शिखा

भगवत्कृपा—एक विचित्र रहस्य

श्री जानकीनाथ कौल 'कमल'
जम्मू, कश्मीर

भगवत्कृपा अहैतुकी है, अनर्गल है, अकस्मात् है। 'यह किस पर होती है, कैसे होती है, कब होती है और कहाँ पर होती है' इस विषय में मनुष्य-मात्र की अल्प,बुद्धि कुछ निश्चय नहीं कर पाती। यह निश्चय तो सूक्ष्म बुद्धि के तर्क से भी परे है। एक पत्थर तोड़ने वाला मजदूर यह नहीं जानता कि वह किस पत्थर को कैसे, कब और किस स्थिति में तोड़ डालेगा। वह अपना हथौड़ा पत्थर पर मारता जाता है और यह निश्चय नहीं रख सकता कि कितनी बार मारने से पत्थर टूट जायेगा। कभी पहली, दूसरी या तीसरी बार ही हथौड़ा मारने से पत्थर टूट जाता है परन्तु कई बार खून-पसीना एक करके मारने से भी पत्थर टूटता नहीं। यह हाल साधक के लिए भगवत्कृपा के पुण्यातिपुण्य अवसर का है। इस विषय में समय का निर्धारण करना असम्भव है। इसके लिए साधक का समयातीत बनना आवश्यक है।

कठोपनिषद् में नचिकेता की कथा है। उद्दालक ऋषि ने फल की कामना से विश्वजित्-यज्ञ किया था। सर्वस्व का दान करते हुए नियमानुसार जब दक्षिणा के रूप में देने के लिए गौएँ लायी जा रही थीं,उस समय बालक नचिकेता ने उनको देख लिया। कुछ गाएँ शक्तिहीन, निरर्थक और मृत्यु के समीप पहुँची हुई थीं। उनकी दयनीय दशा देखते ही नचिकेता के निर्मल अन्तःकरण में विचार उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगा कि दुःखदायिनी अनुपयोगी वस्तुओं को दान के नाम पर देना तो दान के व्याज से अपनी विपद् डालना है, और दान ग्रहण करने वालों को धोखा देना है। इस अनिष्टकारी परिणाम से अपने पिता को बचाने के लिए उसने अपना बलिदान देने का निश्चय किया। उसने पिता से कहा—

"तत कस्मै मां दास्यसि"

'पिताजी, मैं भी तो आपका धन हूँ, आप मुझे किसको देते हैं ?' कुछ उत्तर न मिलने पर उसने दूसरी और तीसरी बार भी अपना प्रश्न दुहराया। ऋषि को क्रोध आ गया और उन्होंने आवेश में आकर कहा—

'मृत्यवे त्वां ददामि'

'तुझे मृत्यु को देता हूँ।' बस यही नचिकेता पर भगवत्कृपा का आरम्भ था। अन्त में जब वह तीन दिन यमराज की प्रतीक्षा में यमसदन में अनशन किये बैठा रहा तो भगवत्कृपा उस पर अवतीर्ण हुई। वह समय का ज्ञान लीन कर चुका था। यमराज ने उस की संयत स्थिति के अनुसार ही नचिकेता को उपदेश देते हुए कहा—

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥
—(कठोपनिषद् १-३-८)

परन्तु जो सदा सावधान (AWARE) होकर अपनी बुद्धि को निरन्तर विवेकशील बनाये रखता है और उसके द्वारा मन को रोक कर पवित्र भाव में स्थित रहता है तथा भगवान को अर्पण किए हुए भोगों का रागद्वेष से रहित हो

निष्कामभाव से शरीर निर्वाह के लिए उपभोग करता रहता है, वह परमेश्वर के उस परमधाम को प्राप्त कर लेता है, जहां से फिर लौटना नहीं होता।'

यमराज नचिकेता के प्रति यह बात स्पष्ट कर देता है कि परमात्मा अपने पुरुषार्थ से नहीं मिलते अपितु उसी को मिलते हैं जिसको वे स्वीकार कर लेते है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य—
स्तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

—कठोपनिषद् १-२-२३

'यह परब्रह्म परमात्मा न तो उनको मिलते है जो शास्त्रों को पढ़-सुन कर लच्छेदार भाषा मे परमात्म-तत्व का नाना प्रकार से वर्णन करते हैं, न उन तर्कशील बुद्धिमान मनुष्यों को ही मिलते हैं जो बुद्धि के अभिमान में प्रमत्त हुए तर्क के द्वारा विवेचन करके उन्हें समझाने को चेष्टा करते हैं, और न उनको ही मिलते हैं जो परमात्मा के विषय में बहुत कुछ सुनते रहते हैं। वे तो उसी को प्राप्त होते हैं जिसको वे स्वयं स्वीकार कर लेते हैं और वे स्वीकार उसी को करते हैं जिसको उनके लिए उत्कट इच्छा होती है, जो उनके विना रह ही नहीं सकता।'

भागवत्कृपा का प्रसाद शुकदेव को तभी प्राप्त हुआ था जब वह राजा जनक के द्वार पर सात दिन तक प्रतीक्षा करते रहे।

भागवत्कृपा उन पर तभी प्रकट हुई जब राजा जनक का महल जलने लगा था और शुकदेव अपने कौपीन को सम्हालने दौड़े। जनक के इस वचन ने योगमाया का आवरण हटा दिया—

'मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किञ्चन'

—'मिथिला में आग लगने से मेरा कुछ भी नहीं जलता।' शुकदेव पर भगवत्कृपा की यही शुभ घड़ी थी जिसके लिए न शुकदेव ने कोई पुरुषार्थ किया था न जनक ने। यह एक ऐसी शुभ घड़ी है जो काल की कलना से परे है। शुकदेव जनक से आत्मानुभव पाकर कृतकृत्य हुए।

जगत्-सृष्टि के क्रम में परमात्मा के पांच-कृत्य हैं—सृष्टि, स्थिति, संहार, विधान और अनुग्रह। विधान के कृत्य में वे 'स्वरूपगोपन-व्यग्र' हैं अर्थात् वे अपने चिदात्मा रूप को छिपाने में लगे हैं। इसी कारण मूढ़-जन उसे नहीं जान पाते 'मूढोऽयं नाभिजानाति'। परन्तु विवेकशील मनुष्य के लिए 'सकृद्विभातोऽयमात्मा'—बिजली की झलक के समान परमात्मा एक क्षण में प्रकट होते हैं। यही भगवत्कृपा अर्थात् ईश्वरानुग्रह है जिसका कृपा-निर्भर साधक पर किसी भी क्षण प्रकट होना सम्भव है। कहा भी है—

ईश्वरानुग्रहादेव पुंसामद्वैत वासना।
महद्भयपरित्राणा विप्राणामुपजायते॥

—अवधूतगीता १-९

'ईश्वर के अनुग्रह से ही मनुष्यों में अद्वैत वासना उत्पन्न होती है जो जन्म-मरण-चक्र के महान् भय से त्राण करती है।'

उपदेशमवाप्यैवमाचार्यात्तत्त्व दर्शिनः।
पञ्चकोशविवेकेन लभन्ते निर्वृतिं पराम्॥

—पञ्चदशी २-३२

'पूर्व जन्मों में उपार्जित पुण्यकर्मपरिपाक से (किसी) तत्त्वदर्शी आचार्य द्वारा उपदेश पाकर पञ्चकोशविवेक होता है और इस प्रकार मोक्षरूप परम सुख को तत्त्वदर्शी प्राप्त करते हैं।'

यावन्नानुग्रह साक्षाज्जायते परमेश्वरात्।
तावन्नो सद्गुरुं कश्चित् सच्छास्त्रमपि नो लभेत्

—योगवासिष्ठ

'जब तक परमेश्वर से साक्षात् रूप में अनुग्रह प्रकट नहीं होता है तब तक (मनुष्य को) न कोई सद्गुरु और न कोई सत्-शास्त्र ही प्राप्त होता है।'

कश्मीर शैवदर्शन शास्त्रों में भी ऐसे प्रमाण मिलते हैं। यथा—

'शक्तिपातवशादेव नोयते सद्गुरुं प्रति।'
—तन्त्रालोक

'जब विवेकशील साधक पर भगवत्कृपा का संयोग होना हो तो उसे किसी 'सद्गुरु' की शरण में जाने की प्रेरणा भगवत्कृपा से स्वयं ही होती है।' भगवत्कृपा के विषय में धर्म, जाति, लिंग, देश, काल आदि का कोई भेद नहीं है।

अद्वैत-वेदान्त शास्त्र में कही हुई भगवत्कृपा अथवा ईश्वरानुग्रह को कश्मीर-अद्वैत-शैवदर्शन (त्रिक्दर्शन) के अनुसार 'शक्तिपात' कहते हैं। वर्तमान काल में इस दर्शन के महामहिम तथा सुविख्यात शैवाचार्य ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू सत्संग में प्रायः कहा करते हैं—'शक्तिपात के विषय में कोई अधिकारी भेद नहीं है।' (Divine Grace is unconditional)। यह चमत्कारी शक्ति किसी पर भी किसी भी समय बिजली की तरह गिरती है और उसे चिद्रूपता के अलौकिक आनन्द से आप्लावित करती है। शिव किसी पर भी किसी समय शक्तिपात करने में विचार ही नहीं करते।'

श्री श्री अभिनवगुप्तपाद के परमेष्ठी गुरु श्री उत्पल-देवाचार्य ने ईश्वर से भगवत्कृपा के लिए छटपटाते हुए ही प्रार्थना की थी—

शक्तिपातसमये विचारणं
प्राप्तमीश न करोषि कर्हिचित्।
अद्य मां प्रति किमागतं यतः
स्वप्रकाशनविधौ विलम्बसे॥

शिवस्तोत्रावलिः १३-१६

'हे स्वेच्छाचारी प्रभु! आपको तो मुझ पर शक्तिपात अर्थात् अनुग्रह करने के समय विचार करना चाहिए था कि मैं आपके अनुग्रह का पात्र हूँ या नहीं, किन्तु आप कभी ऐसा करते ही नहीं। आज मुझ पर क्या आ पड़ी है जो आप अपने चित्प्रकाश की झलक दिखाने में देर लगा रहे हैं।'

आचार्य उत्पलदेव के इसी अलौकिक ग्रन्थ का मंगलाचरण, भगवत्कृपा प्राप्त ज्ञानी-भक्त की महिमा का द्योतक है—

न ध्यायतो न जपतः स्याद्यस्याविधिपूर्वकम्।
एवमेव शिवाभासस्तं नमो भक्तिशालिनम्॥
—शिवस्तोत्रावलिः १-१

'जिस भगवदनुरागी भक्त को भगवान् का ध्यान करने के लिए प्रयत्न न करते हुए (क्योंकि उसको भगवदानुराग की दृढ़ता के कारण तैलधारा-वत् नित्य और निरन्तर, चलते-फिरते उठते-बैठते खाते-पीते और सोते-जागते चित्स्वरूप में रहने का दृढ़ अभ्यास सिद्ध हुआ होता है) और ईश्वर-चिन्तनार्थ भगवत् नाम का जप न करते हुए (क्योंकि उसे पूर्वाभ्यास की दृढ़ता से ध्येयाकार वृत्ति सदा बनी रहती है अथवा परप्रमातृभाव में स्थिर रहता है)। तात्पर्य यह है कि वह प्रत्येक दशा में समाहित-चित्त हो चित्स्वरूप में लीन रहता है। उसे 'शरवत्संहितो भवेत्' अर्थात् जैसे तीर निकल कर झट निशान पर लगता है, ध्यान की ऐसी युक्ति सिद्ध हुई होती है। जो जिससे भिन्न होता है वह उसका स्मरण अथवा जप-कीर्तनादि करता है, परन्तु जिसे ध्येयाकार वृत्ति का साक्षात्कार हुआ हो वह स्वयं ध्यानरूप तथा जपरूप बना होता है। इस प्रकार जिसे अविधि-पूर्वक अर्थात् वेदागम विधि-निषेध से परे होने के कारण, एवमेव अर्थात अनेक जन्मार्जित पुण्य-पुञ्ज के कारण ईश्वरानुग्रह (शक्तिपात) से कल्याण स्वरूप भगवान् शिव का साक्षात्कार हुआ हो, अथवा जो ज्ञानचक्षु के उन्मीलित होने के कारण स्वस्वरूपावस्थित हुआ हो, उसी भक्त शिरोमणि को हम नमस्कार करते हैं।'

अतः भगवत्कृपा एक विचित्र रहस्य है जिसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता। यह 'स्वानुभवै-

कगम्य' है। मुनि बाल्मीकि भगवान राम से अपने आश्रम में कहते हैं—

'सो जानइ जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
—रामचरितमानस

यही बात किसी उर्दू के कवि ने यूँ कही है—
'जाहिरो-बातिन कि इकरंगी
कमाले इश्क है,
नाम उसी का लब पे है,
जिसकी मुहब्बत दिल में है।'

श्रुति-स्मृति आदि शास्त्रों में भगवत्कृपा के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कुछ एक उदाहरण ही सच्चे भगवद् भक्तों के लिए मर्मस्पर्शी हो सकते हैं—

१. याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी प्रसंग में मैत्रेयी पर भगवत्कृपा उसी समय हुई थी जब उसके निर्मल अन्तःकरण से प्रव्राज करते हुए अपने श्रद्धेय पति के प्रति ये शब्द निकले थे—

'येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्।'
बृहदारण्यकोपनिषद २-४-३

'जिस (गृह-सम्पत्ति से मैं अमर नहीं हो सकती उस से मेरा क्या प्रयोजन।' तभी तो महर्षि याज्ञवल्क्य के श्रीमुख से स्वानुभवैकगम्य यह अलौकिक वाक्य स्वभाव से ही निकला था—

'येनेदं सर्वं विजानाति तं केन।
विजानीयाद्विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति॥'
बृहदारण्यकोपनिषद २-४-२४

'जिस के द्वारा इस सब को जानता है, उसे किस के द्वारा जाने? (हे मैत्रेयी!) विज्ञाता को किसके द्वारा जाने?'

२. याज्ञवल्क्य-गार्गी संवाद में गार्गी के प्रश्नों के उत्तर देते हुए जब याज्ञवल्क्य ने उसके प्रति कहा—

'यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वास्माल्लोकात् प्रैति स कृपणः।'
— बृहदारण्यकोपनिषद ३-८-१०

'हे गार्गी! जो कोई भी इस अक्षर को बिना जाने इस लोक से मर कर जाता है, वह कृपण (दीन) है।'

तो गार्गी चुप हुई थी। उसके लिए भगवत्कृपा की यही शुभ घड़ी थी। तर्क-बुद्धि भगवत्कृपा से अत्यन्त निर्मल हो चुकी थी।

३. आरुणि-श्वेतकेतु प्रसंग में जब श्वेतकेतु बारह वर्ष की अवस्था में उपनयन कराकर चौबीस वर्ष का होने पर सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन कर अपने को बड़ा बुद्धिमान और व्याख्या करने वाला मानते हुए उद्दण्डभाव से घर लौटा तो पिता ने उससे कहा—

'तमादेशमप्राक्ष्यः'
'क्या तुने वह आदेश (अपने गुरु से) पूछा है?'
'येनाश्रुत, भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति'
—छान्दोग्योपनिषद ६-१-३

'जिस के द्वारा अश्रुत श्रुत हो जाता है, अमत मत हो जाता है और अविज्ञात विशेष रूप से ज्ञात हो जाता है।'

'यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञात्
स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्॥'
—छान्दोग्योपनिषद ६-१-

'हे सौम्य! जिस प्रकार एक मृत्तिका के पिण्ड के द्वारा सम्पूर्ण मृण्मय पदार्थों का ज्ञान हो जाता है कि विकार केवल वाणी के आश्रयभूत नाम मात्र हैं, सत्य तो केवल मृत्तिका ही है।'

तब श्वेतकेतु पर भगवत्कृपा का प्रादुर्भाव हुआ। उसने श्रद्धापूर्वक श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ अपने पिता आरुणि की शरण में जाकर ही, उस परम तत्त्व को जान लिया।

४. महाभारत के वनपर्व अध्याय १३३-१३४ में अष्टावक्रजनक की कथा है। पूर्व पुण्यविपाक से परमार्थ-जिज्ञासा राजा जनक में उत्पन्न हुई थी। इसी जिज्ञासा में उसे परमदयालु श्री अष्टावक्र जी मिले। जनक ने तो श्रद्धापूर्वक उनको प्रणाम किया परन्तु मन में ऋषि के आठवक्र अंग और कुरूपता को देखकर, अभिमान तथा घृणा प्रवेश कर गयी। दिव्य-दृष्टि के द्वारा राजा के मन का विचार जानकर अष्टावक्र जी ने कहा—'हे राजन्! देहदृष्टि को छोड़ यदि आत्मदृष्टि करोगे तो देखोगे कि यह देह टेढी है परन्तु इसमें स्थित आत्मा टेढी नहीं है, तो जनक में सच्ची जिज्ञासा जाग्रत हुई। भागवत्कृपा से उसका मोह तत्काल दूर हुआ और उसी क्षण गुरु-दीक्षा के लिए प्रार्थना सुनकर अष्टावक्र जी ने उसे अद्वैत ब्रह्मनिष्ठा में सुस्थिर करने के लिए आरम्भ में कहा—

'मुक्तिमिच्छसि चेत तात! विषयान् विषवत् त्यज।
क्षमार्जवदयातोषसत्य पीयूषवद् भज॥'

—अष्टावक्र संहिता २-१

'जो मोक्ष है तू चाहता,
विष-सम विषय तज तात रे।
आर्जव, क्षमा, संतोष,
शम-दम पी सुधा दिन रात रे॥'
—अनुवाद—यतिवर भोलेबाबा जी॥

सद्गुरु अष्टावक्र द्वारा जिज्ञासु राजा जनक पर भगवत्कृपा इस प्रकार प्रकट हुई, और आज भी संसार भर के लिए 'अष्टावक्र-संहिता' जैसा अनुभवपूर्ण तथा अत्युत्तम ग्रन्थ उपलब्ध है। परमहंस रामकृष्ण ने युवा नरेन्द्र (स्वामी-विवेकानन्द) को इसी अनुपम ग्रन्थ के अध्ययन पर बल दिया था।

५. भक्त शिरोमणि हनुमान पर भगवत्कृपा का अलौकिक उदाहरण रामायण में मिलता है। धनुष-बाण लिए मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र लक्ष्मण के साथ ऋष्यमूक पर्वत की बगल में रावण द्वारा चुराई सीता के अन्वेषणार्थ चल रहे थे तो सुग्रीव की दृष्टि उन पर पड़ी। वह भयभीत हुआ और सोचने लगा कि कहीं बाली के भेजे हुए ये वीर मुझे मारने के लिए तो नहीं आ रहे। उसने अपने एक मन्त्री हनुमान को ब्रह्मचारी वेष में उन से उस बात का पता करने के लिए भेजा। राम-लक्ष्मण की भेंट हुई। यही वह उत्तम घड़ी थी जब भक्त हनुमान पर भगवत्कृपा हुई थी। बस भक्त को भगवान् मिल गये।

६. 'नन्द घर आनन्द भयो जै कन्हैया लाल की।' भगवान् कृष्ण का जन्म कारावास में वसुदेव-देवकी से हुआ। परन्तु भगवत्कृपा नन्दबाबा-जसुदा के भाग्य में थी। कवि ने मार्मिक शब्दों में इसका संकेत किया है—

'बेटा भयो वसुदेव के घर,
दुन्दुभि बाजे नन्द के द्वारे।'

७. नरोत्तमदासकृत लोक प्रिय सुदामा-चरित में भगवत्कृपा का अनूठा उदाहरण यूँ मिलता है—

जब दरिद्र ब्राह्मण सुदामा अपनी पत्नी सुशीला की प्रेरणा से भगवान् कृष्ण से मिलने द्वारका चले तो—

'भेंटि भली विधि विप्र सों, कर गहि त्रिभुवनराय।
अन्तःपुर को लै गए, जहां न दूसरो जाय॥
ऐसे बेहाल बिबाइन सों पग कंटक जाल लगे पुनि जोए
हाय महा दुःख पायो सखा!
तुम आए इतै न कितै दिन खोए।
देखि सुदामा को दीन दसा करुणा करिकै
करुणानिधि रोए,
पानी परात को हाथ छुयो नहिं, नैनन के
जल सों पग धोए।'

और अत्यन्त प्रेमभाव से सखा कृष्ण प्रिय सुदामा से बोले—

'कछु भाभी हम को दियो,
सो तुम काहे न देत।
चांपि पोटरी कांख में, रहो कहो केहि हेत॥'

संकोच में पड़ा सुदामा किंकर्त्तव्यमूढ़ था।

इस चिन्तनातीत दशा में वह—

'खोलत सकुचत गांठरी, चितवत हरि की ओर।
जीरन फट फटि छुरि परे, बिखरि गए तेहि ठौर॥'

बस सुदामा पर, उस के अनजाने ही, भगवत्कृपा हुई और भगवान् कृष्ण ने—

'एक मुट्ठी, हरि भरि लई, लान्हीं मुख में डारि।
चबत चबाऊ करन लगे, चतुरानन त्रिपुरारि॥'

बस सुदामा के बिखरे तण्डुल उसके लिए भगवत्कृपा के कारण बन गये।

८. जेन-कथा (Zen Story) में पढा है कि एक साधक-शिष्य गुफा के द्वार पर घुटनों तक बर्फ में समय की संज्ञा से अतीत होकर गुरु महाराज के दर्शनार्थ खड़ा था, तो कई दिनों के बाद जब समाधिस्थ गुरु की आंख खुली तो भक्त-शिष्य पर कृपा कटाक्ष हुआ।

९. युवा नरेन्द्र नास्तिक था। अपने कुछ मित्रों की प्रेरणा से वह दक्षिणेश्वर मन्दिर में परमहंस रामकृष्ण के पास हंसी-मखौल उड़ाने चला। कमरे के द्वार पर पहुंच कर परमहंस देव के दर्शन पाकर ही उसका काया-पलट हुआ और स्वामी विवेकानन्द जनता के लिए आदरणीय गौरव का स्थान पा गये। उसे क्या पता था कि 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'—'परमात्मा तो उसी को प्राप्त होते हैं जिस को वे स्वीकार कर लेते हैं।'

सारांश यह है कि कुण्डलिनी शक्ति प्रत्येक प्राणी में मौजूद है। इस महाशक्ति का विकास जाति, कुल, धर्म, स्थान तथा समय के विचार से रहित किसी भी प्राणी में होता है। 'कहां, कब या कैसे भगवत्कृपा होती है' इस विषय में अल्पबुद्धि मनुष्य कुछ कह नहीं सकता। सच्चे साधक की अन्तरात्मा में तो सर्वशक्तिमान भगवान् के प्रति केवल यही प्रार्थना होती है

'नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे
कामादि दोषरहितं कुरु मानसं मे॥'

'हे रघुपति! हमारे हृदय में तो कोई दूसरी इच्छा नहीं है। आप अखिल विश्व चराचर के अन्तरात्मा हो और मैं यह सत्य कहता हूं। हे रघुपुङ्गव! मुझ निर्भर भक्ति का दान दो और मेरे मनको कामादि दोष से रहित बना दो।'

भगवतकृपा प्राप्त ज्ञानी भक्त-सन्त अपने स्वरूप का प्रत्यभिज्ञान प्राप्त कर चकित-मुद्रा में 'बशाशत की लहर' को इस प्रकार प्रकट करता है

'मैं क्या यह देखता हूँ मेरा ही नूर मैं हूँ,
आंखें जिधर को देखें बस एक मैं ही मैं हूँ।
यूं तो अनेक शक्लें आंखों में जम रही थीं,
अब तो वहां सारी लेकिन कुछ भी नहीं है मैं हूँ।
वाह वा! अजब तमाशा? यह खेल है गजब का,
जिस में कि जाम भर कर मुझको पिलाता मैं।
खाता खिलाता मैं हूँ पीता पिलाता मैं,
यह खान-पान लेकिन कुछ भी नहीं है मैं हूँ।
बाजे सुरीले गाने तम्बूर के तराने,
वहदत में अपनी हर सू सुनता सुनाता मैं हूँ।
गर यां हूँ तो यहां हूँ, गर वां हूँ तो वहां हूँ।
आहा! अहा! अहा हा! बस मैं ही मैं ही मैं हूँ।'

—कमल

अतः मैं उन पूर्णब्रह्म चितस्वरूप सद्गुरु महाराज के चरण- कमलों का आश्रय लेता हूँ जिनके कृपा कटाक्ष से—'पंगु गिरि लंघे, अन्धे को सब कुछ दर्शायी—ऐसी भगवतकृपा सुलभ होती है

या काचिद् वै क्वचिदपि दशा किञ्चिदभ्यसापूरा-
दानन्दाख्या भवभयहरा स्यात् सुभक्तस्य सद्यः।
सिद्धिः सैषा सुरवितृणां यस्य भक्त्या भवेन्नु
तं स्वात्मानं विभवपुषं सद्गुरुं वै प्रवद्ये॥

—दैशिकपञ्चदशी (कमल)

'कहीं किसी दीर्घकाल तक निरन्तर चलने वाले धारावाहिक अभ्यास से किसी श्रेष्ठ भक्त को जो तत्काल कोई अनिर्वचनीय, भवभयहारिणी आनन्दावस्था प्राप्त हो जाती है, वही उसकी सिद्धि है। देवताओं, पितरों तथा मनुष्यों को यह उत्कृष्ट सिद्धि, जिनकी भक्ति (सेवा-पूजा) से उपलब्ध होती है उन ज्ञानादि ऐश्वर्यमय शरीर वाले निजात्मा स्वरूप सद्गुरु की मैं शरण लेता हूँ।'

रामचरितमानस में शिष्य के लक्षण (२)

—स्वामी शशांकानन्द
बेलुड़ मठ

गुरु और इष्ट को अभिन्न मानना

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागौं पाय।
बलिहारी गुरु आपनो जिन हरि दियो मिलाय॥

गुरु गीता के ४१ वें श्लोक में भगवान शिव स्वयं पार्वती जी से कहते हैं, हे देवी !

न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः।
तत्त्वज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः॥

—अर्थात् कोई भी ऐसा तत्त्व नहीं जो गुरु से अधिक हो, न हि कोई ऐसा तप है जो उनसे अधिक हो। तत्त्वज्ञानप्रद गुरु से बढ़कर कोई भी नहीं है, ऐसे, श्री गुरु को नमस्कार है।

गुरुदेव जगत्सर्वं ब्रह्माविष्णु शिवात्मकम्।
गुरोः परतरंनास्ति तस्मात्संपूजयेद् गुरुम्॥

—अर्थात् ब्रह्मा विष्णु और शिवरूप संपूर्ण जगत् गुरु रूप ही है। गुरु से श्रेष्ठ कोई नहीं है। इसलिए गुरु का भलीभाँति पूजन करें। प्रत्येक शिष्य के लिए उसके गुरु ही परमदेव हैं, साक्षात् भगवान् हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी का इस संदर्भ में कथन है,

"गुरु की पूजा ईश्वर की भाँति की जानी चाहिए। वह ईश्वर है, उससे तनिक भी कम नहीं।.....—शिष्य को गुरु की पूजा स्वयं ईश्वर के समान करनी चाहिए। जब तक मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार न कर ले, वह अधिक से अधिक सजीव ईश्वर को, मनुष्य के रूप में ईश्वर को ही जान सकता है, इसके अतिरिक्त वह ईश्वर को कैसे जानेगा ?

गुरु गीता में पुनः भगवान् शिव कहते हैं :

गुरूरादिनादिश्च गुरुः परम दैवतम्।
गुरोः परतर नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः॥

—अर्थात् गुरु आदि, अनादि और परम देवता है। उनसे बढ़कर और कोई नहीं है। उन्हीं गुरुदेव को नमस्कार है।

रामचरितमानस में भगवान् श्रीराम स्वयं भरतजी महाराज से यह गुरुतत्त्व कहते हैं कि गुरु तो कल्पतरु हैं अर्थात् गुरुदेव के प्रभाव से ही हमारा लोक और परलोक संवरता है।

राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होईहि परिनाम॥

—अर्थात् राज्य का सब कार्य लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धन, घर— इन सभी का पालन गुरुदेव का प्रभाव करेगा और परिणाम शुभ होगा।

सहित समाज तुम्हार हमारा।
घर बन गुर प्रसाद रखवारा॥
मातु-पिता गुरु स्वामि निदेसू।
सकल धरम धरनी धर सेसू॥

—गुरु जी का अनुग्रह ही घर में और वन में समाज सहित तुम्हारा और हमारा रक्षक है। माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा का पालन समस्त धर्मरूपी पृथ्वी को धारण करने में शेष जी के समान है।

देवाधिदेव महादेव जी ने भी गुरु गीता में इसी भाव को कहा है,

गुरु कृपा प्रसादेन ब्रह्मा विष्णु सदाशिवाः।
समर्था प्रभवादौ च कैवल्यं गुरु सेवया॥

—गुरु ही शिष्य की पूजा, जप और ध्यान का विषय है। इस साधना पद्धति को प्रत्येक मत ने स्वीकार किया है।

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्ति : पूजामूलं गुरोः पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा॥

—ध्यान का आदि कारण गुरु-मूर्त्ति है। गुरुदेव के चरण ही पूजा का मुख्य स्थान हैं। गुरुदेव का वाक्य सब मन्त्रों का मूल और गुरु की कृपा मुक्ति का कारण है।

युगावतार भगवान् श्रीकृष्ण ने भी उपदेश किया है—

'जो इष्ट हैं, वे ही गुरु के रूप में आते हैं। शव- साधना के पश्चात् जब इष्ट देव के दर्शन होते हैं, तब गुरु स्वयं आकर कहते हैं— "हे शिष्य! वह देख (इष्ट देवता को) यह कहकर वे इष्टदेवता के रूप में लीन हो जाते हैं।

शिष्य तब गुरु को नहीं देख पाता।

युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द जी ने भी कहा है:

'गुरु तुम्हारे देखते-देखते अन्तर्धान हो जाते हैं और रह क्या जाता है? गुरु के चित्र का स्थान स्वयं ईश्वर ले लेते हैं। गुरु वह आभामय चेहरा है, जिसे ईश्वर हम तक पहुँचने के लिए धारण करते हैं। जब हम एकटक उसे निहारते रहते हैं, तो धीरे-धीरे वह चेहरा गिर जाता है और ईश्वर प्रकट हो जाते हैं।'

रामचरितमानस में माता पार्वती जी ने अपने गुरुदेव भगवान् शिव में इसी भावना का प्रदर्शन किया है। वे कहती हैं

विश्वनाथ मम नाथ पुरारी।
त्रिभवन महिमा विदित तुम्हारी।
चर अरु अचर नाग नर देवा।
सकल करहिं पद पंकज सेवा॥

—हे संसार के स्वामी। हे मेरे नाथ। हे त्रिपुरासुर का बध करने वाले। आपकी महिमा तीनों लोकों में विख्यात है। चर, अचर, नाग, मनुष्य और देवता सभी आपके चरणों की सेवा करते हैं।

प्रभु समरथ सर्वग्य सिव सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान वैराग्य निधि प्रनत कल्पतरु नाम।

आप समर्थ हैं

'हे प्रभो। आप सर्वसमर्थ हैं।' अर्थात् भगवान हैं क्योंकि एक मात्र भगवान ही समर्थ हैं। भगवान श्री राम ने पत्थर की अहिल्या को जीवित नारी बना दिया, भगवान विष्णु ने एक निर्जीव खम्भे को फाड़कर अपना नरसिंह रूप प्रकट किया। भगवान गुरुदेव भी इसी प्रकार समर्थ हैं। वे जड़ जीव को चैतन्य शिव में बदलने की सामर्थ्य रखते हैं। शिष्य का कल्याण करने के लिए वे खम्बे की तरह जड़ नर देह में से भी भगवान की भाँति प्रकट होने की सामर्थ्य रखते हैं। प्रभु असम्भव को सम्भव कैसे कर सकते हैं, इस सम्बन्ध में हमने एक बड़ी ही रोचक गाथा सुनी है।

एक बार लक्ष्मी जी से भगवान विष्णु का तर्क हो गया। भगवान विष्णु जगत का पालन कैसे करते हैं? लक्ष्मी जी ने परीक्षा लेने के लिए एक छोटी सी डिबिया में एक चींटी को बन्द करके कहा, "देखूँ न, अब यह चींटी बिना खाए पिए इसमें कैसे जीवित रह सकती है? इसके खाने की व्यवस्था अब कौन करेगा?" सर्व समर्थ प्रभु मुस्कुराए और चुप रहे। लक्ष्मी जी ने उस डिबिया को बहुत सभालकर रखा। एक महीने के पश्चात् भगवान विष्णु की उपस्थिति में उस डिबिया को खोला तो अवाक रह गयीं। उन्होंने देखा चींटी एक चावल खा रही थी। यह चावल कहाँ से आया। वे सोच ही रही थीं कि भगवान विष्णु ने मुस्कुराते हुए कहा 'व्यवस्था तो मैंने तब ही कर दी थी जब तुमने डिबिया बन्द की थी। मुझे तो कुछ करना ही नहीं पड़ा। डिबिया बन्द करते समय तुम्हारे ही माथे पर लगे तिलक से कुछ चावल

इस डिबिया में गिर पड़े थे और वहीं यह चींटी इस एक महीने तक खाती रही ? प्रभु विश्व के एक कीट तक की व्यवस्था करने में समर्थ हैं। गुरुदेव भी अपने शिष्यों की आध्यात्मिक भूख उठने पर आध्यात्मिक भोजन की व्यवस्था करने में सर्व-समर्थ होते हैं।

सर्वज्ञ

पार्वती जी कहती है, 'हे प्रभो। आप सर्वज्ञ अर्थात् सब कुछ जानने वाले हैं। प्रश्न हो सकता है कि यह कैसे सम्भव है। ससार में जितने गुरु हैं क्या सब ही सर्वज्ञ हैं। भू विज्ञान, रसायन विज्ञान, जगत की सभी भाषाएं, किस बैंक में कितना रुपया है आदि सभी का क्या उन्हें ज्ञान होता है ? नहीं, सर्वज्ञ का अर्थ यहाँ दूसरा ही है। मुण्डकोपनिषद् में शौनक नामक सुप्रसिद्ध महा-गृहस्थ ने अङ्गिरा ऋषि से जाकर पूछा, "कस्मि-न्नुभगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति"॥ हे प्रभो ! वह क्या वस्तु है जिसके जानने से मनुष्य सब कुछ जान लेता है ? अङ्गिरा ऋषि ने उत्तर दिया, 'पुरुष एवेदं विश्व कर्म तपो ब्रह्म-परामृतम्। एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्या-ग्रंथि विकरतीह सौम्य॥' अर्थात् यह सारा जगत कर्म, और तप (ज्ञान) पुरुष ही है। वह पर और अमृत रूप ब्रह्म है। उसे जो सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर स्थित जानता है, हे सौम्य ! वही इस लोक में अविद्या की ग्रन्थि का छेदन कर देता है अर्थात् सब कुछ जान लेता है।

तात्पर्य यह है कि सर्वज्ञता उस ब्रह्म को जानना है जो समस्त विश्व ब्रह्माण्ड, जीव जगत बने हैं या भासित हो रहे हैं। जिस प्रकार कांचन (सोना) का ज्ञान होने से सब गहनों का और मिट्टी का ज्ञान होने से मिट्टी के खिलौनों का ज्ञान हो जाता है। प्रत्येक शिष्य को यह विश्वास होना चाहिए को उसके गुरुदेव को उसी ब्रह्म का ज्ञान हो चुका है अर्थात् वे सर्वज्ञ हैं।

रामचरितमानस में सर्वज्ञ किसको कहा है ? गोस्वामी जी के मन में तो जाननहारा वह है, जिसने यह जान लिया कि सारे विश्व ब्राह्माण्ड में प्रेम करने योग्य केवल राम ही हैं, वे ही केवल प्रिय वस्तु हैं।

राम हि केवल प्रेम पियारा।
जानि लेउ जोइ जाननिहारा॥

अर्थात् जिन्हें भगवान के सिवा कुछ भी प्रिय नहीं लगता- वे ही सर्वज्ञ हैं।'

कल्याणस्वरूप

पार्वती जी ने भगवान शंकर को कल्याण-स्वरूप कह कर सम्बोधन किया। जीव का सबसे बड़ा कल्याण तो तब होता है जब वह माया-पाश से मुक्त हो जाता है। वह भवसागर से तर जाता है। रामचरितमानस में इस प्रकार भव सागर से पार कराने की क्षमता तो केवल गुरुदेव में ही बतायी गयी है।

गुरु बिनु भव-निधि तरइ न कोई।
जौं बिरंचि शंकर सम होई॥

पुनः रामभक्त केवट के विचार में तो परम कल्याण भगवान् के दर्शनों में ही होता है। वे कहते हैं—

नाथ कुशल पद पंकज देखें।'

राजा मनु का मत भी इसी प्रकार का है। वे कहते हैं:

नाथ देखि पद कमल तुम्हारे।
अब पूरे सब काम हमारे॥

और श्री भगवद् पाद्पद्म के दर्शन तो गुरुदेव ही करा सकते हैं। गुरु गीता के इस श्लोक को देखिए,

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

(शेष पृष्ठ ३० पर)

स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन-कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय
अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

एक दिन बातों बातों में यह प्रसंग निकल पड़ा कि धर्मप्रचार किस प्रकार करना चाहिए। उस दिन वहाँ हरमोहन बाबू के अतिरिक्त विहारी बाबू और गिरीन बाबू भी उपस्थित थे। हरमोहन बाबू तथा गिरीन बाबू के बीच चर्चा छिड़ी हुई थी। दोनों को ही व्याख्यान द्वारा धर्मप्रचार का हामी देखकर लाटू महाराज उनकी बातों के बीच ही बोल उठे - 'ओ गिरीन बाबू ! यह क्या कह रहे हैं ? ढोल बजाकर क्या धर्मप्रचार होता है ? धर्म क्या बाहर की वस्तु है कि एक व्यक्ति के कहने मात्र से दूसरा उसे ग्रहण कर लेगा ? धर्म उपलब्धि की चीज है। हो-हल्ले के बीच धर्म की उपलब्धि नहीं होती; आप जितना ही शोरगुल करेंगे, लोग उतने ही बहिर्मुख होते जाएँगे। और अन्तर्मुख हुए बिना धर्म नहीं होता। यही देखिए न ! दस-पन्द्रह या बीस वर्ष पहले इसी कलकत्ता शहर में धर्म का कैसा ज्वार उठा था ! याद है न, कैसे सड़क की हर चौमुहानी पर पादरी लोगों का दल (Salvation Army) लेक्चर दिया करता था। फिर समाज में ब्राह्म लोग भी व्याख्यान देते थे। हर मुहल्ले की हरिसभा में कीर्तन होता था। उस समय की बात स्मरण कीजिए। एक दिन कम्पनी के (बिडन) उद्यान में केशव बाबू (केशवचन्द्र सेन) ने व्याख्यान दिया और उसके बाद वाले दिन उसी उद्यान में ईसाई काली (Rev. Kali Krishna Banerjee) ने लेक्चर दिया था। लोगों ने उनकी बातें सुनीं। फिर एक दिन कृष्णानन्द स्वामी आये और वे भी वक्तृता दे गये। लोगों ने उन्हें भी सुना। वक्ताओं के एक दल ने हिन्दूधर्म को गालियाँ दीं और दूसरे दल ने उसी धर्म की प्रशंसा की। शशधर पण्डित के दल ने तो धर्म की नयी व्याख्या ही शुरू कर दी। इतने जोर शोर के साथ धर्म का प्रचार होने लगा। पर इसका फल क्या हुआ ? जिन लोगों ने सभा आयोजित करके व्याख्यान द्वारा प्रचार किया, क्या उनका दल बढ़ा ? नहीं, बल्कि जो तपस्या के द्वारा उन्हें (भगवान् को) जानकर त्याग के पथ पर अग्रसर हुए उनकी टोली में लोग सम्मिलित होने लगे। इतने जो दल दीख पड़ते थे, वे सब कहाँ लुप्त हो गये ? क्या उनका अब वैसा प्रभाव दिखाई पड़ता है ? उन दिनों तो हम लोग देखते थे कि लड़के, बूढ़े, युवक सभी धर्म को लेकर तर्क कर रहे हैं, झगड़ा कर रहे हैं, शोर मचा रहे हैं; परन्तु अब वे लोग कहाँ हैं ? आप लोग अच्छी तरह समझ लीजिए कि भीतर में वस्तु न रहे तो खोखली बातों से कुछ नहीं होता। भीतर में त्याग, वैराग्य और प्रेम अवश्य होना चाहिए, लोग तभी विश्वास करते हैं। भगवान् का चक्र ऐसे ही चलता है। यही देखिए न, स्वामीजी ने पहले कैसी कठोर तपस्या की और बाद में जब उन्हें लोगों को उपदेश देने का आदेश मिला, तो लोगों ने तुरन्त उनकी बातें ग्रहण कर लीं। स्वामीजी के एक ही लेक्चर के फल से सम्पूर्ण जगत् के लोगों की दृष्टि उन पर जा पड़ी। उस व्याख्यान के पहले स्वामीजी को भला जानता ही कौन था ? उसके बाद ही तो चक्र घूम पड़ा। जिसकी कभी किसी ने कल्पना तक नहीं की थी, वही हो गया।' बिहारी बाबू ने हमें ये बातें

बतायी थीं। 'वसुमती' मासिक में भी उन्होंने इन्हीं बातों का सारांश प्रकाशित कराया था।

हरमोहन बाबू के घर ही एक बार और इसी विषय पर बात उठी थी। उस समय वहाँ पर हरमोहन बाबू के अतिरिक्त डॉक्टर निताई हालदार और सुरेशचन्द्र दत्त उपस्थित थे। उस दिन लाटू महाराज ने कहा था—"वक्तृता से जितना कार्य होता है उससे कहीं अधिक कार्य सद्ग्रन्थ पाठ से होता है; क्योंकि व्याख्यान में वक्ता के साथ श्रोता का अल्पकालिक संग ही होता है, जबकि ग्रन्थकार के साथ पाठक का संयोग घनिष्ठतर और दीर्घकाल-व्यापी होता है। सद्ग्रन्थ पाठ करने से साधुसंग का फल होता है, यह बात वे (श्रीरामकृष्ण) सबको बताया करते थे।" इस कथन को सुरेश बाबू ने लिपि-बद्ध कर लिया था।

एक बार बलराम मन्दिर में उन्होंने एक संन्यासी को धर्मप्रचार के विषय में जो कुछ कहा था, उसे भी हम यहीं उद्धृत कर देते हैं, क्योंकि पुस्तक में एक ही प्रसंग का विविध स्थानों पर वर्णन करना समीचीन नहीं है। उन्होंने कहा था—"अब तो मैं देख रहा हूँ कि वस्तुलाभ किये बिना ही तुम लोगों को धर्मशिक्षा देने आते हो। परन्तु वह धर्म लेगा कौन? पुस्तकें पढ़कर क्या धर्म का तत्त्व समझा जा सकता है? धर्म उपलब्धि की वस्तु है। पहले वस्तु की उपलब्धि करो और उसके बाद यदि उनका आदेश मिले तभी धर्मप्रचार करने जाना। बिना चपरास के प्रचार करने से लोग तुम्हारी बात भला क्यों मानेंगे? श्रीरामकृष्ण एक कहानी बताया करते थे, 'उस अंचल में हालदारपुकुर नाम का एक तालाब है। कुछ लोग हर रोज तालाब के किनारे जाकर शौच कर आते थे। जो लोग सुबह स्नान के लिए आते, वे (गन्दगी देखकर) खूब चिल्लाते और कोसते। पर जो लोग वहाँ शौच जाते थे, वे उन गालियों की परवाह नहीं करते और दूसरे दिन रात को फिर वहीं जाकर गन्दा कर आते। तब लोगों ने हारकर कम्पनी में शिकायत की। कम्पनी वालों ने एक चपरासी भेज दिया। उस चपरासी के सूचना लगा देने के बाद वहाँ का शौच बन्द हुआ।'

वे (श्रीरामकृष्ण) और भी कहते थे, "प्रचार! यह तो अभिमान की बात है। मनुष्य एक तुच्छ जीव है। जो चन्द्र-सूर्य की सृष्टि करके जगत् को प्रकाशित कर रहे हैं, वे अपना प्रचार स्वयं ही कर लेंगे। प्रचार करना क्या साधारण बात है? जब उनका प्रकाश किसी मनुष्य में अभिव्यक्त होता है, तभी वह व्यक्ति उनका प्रचार करने की शक्ति प्राप्त करता है। तुम्हारे भीतर यदि उनका प्रकाश हुआ तो तुम जिसे भी जो कुछ कहोगे वह उसे अवश्य मानेगा।"

काशी में भी उन्होंने एक व्यक्ति को इसी भाव की बातें कहीं थीं, जो निम्नलिखित हैं—"पहले अपना चरित्र गढ़ डालो। लोग तुम्हारा चरित्र देखकर तुम्हारे पास आयें तब प्रचार करने जाना। अभी तुम्हारी बातें भला कौन सुनना चाहता? तुम तो जबरन गले पड़कर लोगों को अपनी बातें सुनाते हो। वे समझते हैं कि इसमें तुम्हारी ही गरज है, इसलिए वे तुम्हारी बातें नहीं लेंगे। परन्तु जब वे समझेंगे कि तुम्हारी कोई गरज नहीं, उन्हीं लोगों के भले के लिए तुम ये बातें कह रहे हो, तब तुम जो भी कहोगे उसे वे स्वीकार कर लेंगे। तब वे तुम्हारी बातों का गलत अर्थ नहीं लगायेंगे। तब तुम्हारे प्रचार से उनका उपकार होगा। वे (श्रीरामकृष्ण) कहा करते थे, 'प्रदीप जलाने पर कीट-पतंगे अपने आप आ जाते हैं, उन्हें बुलाना नहीं पड़ता; वैसे ही शक्ति मिल जाने पर मनुष्य में ऐसा आकर्षण आ जाता है कि लोग उसके पास अपने आप ही खिंचे चले आते हैं, अमुक समय लेक्चर होगा ऐसी सूचना नहीं भेजनी पड़ती। चुम्बक क्या कभी लोहे से कहता है कि तुम मेरे पास आओ? नहीं कहना पड़ता। चुम्बक के आकर्षण से लोहा अपने आप ही खिंचा चला आता है। वैसे ही यह भी समझो।'"

क्रमशः पाँच-छह महीने हरमोहन बाबू के घर रात बिताने के बाद लाटू महाराज अचानक ही एक दिन भक्तपालक रामचन्द्र दत्त के घर आ पहुँचे। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि माँ (अर्थात् राम बाबू की पत्नी) कठिन रोग से पीड़ित होकर मरणासन्न पड़ी हैं। अतः महीने-डेढ़ महीने वे वहीं ठहर गये। राम बाबू की मंझली कन्या ने बताया था—'लाटू दादा ने जैसे पिताजी की मृत्यु के समय सेवा की थी वैसे ही उन्होंने माँ की मृत्यु के समय भी किया था। वे काली दादा स्वामी योगविनोद) के साथ रात में जागकर माँ की सेवा करते थे और हममें से किसी को रात में ज्यादा देर तक जागते देखकर कहते, 'जाकर सो जाओ, नहीं, तो रात में जागकर बाद में बीमार पड़ोगी।' माँ की की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने हमारे घर आना बहुत कम कर दिया। और हम भी पाँच जन पाँच जगह चली गयीं। माँ की मृत्यु के बाद लाटू दादा ने हमारे पोसे हुए मैना पक्षी को उड़ा दिया था।" इस मैना पक्षी को लेकर भी राम बाबू के जीवनकाल में एक घटना हुई थी। एक बार वह पक्षी उड़ गया। लाटू महाराज को यह बात ज्ञात न थी। एक दिन वे काँसारीपाड़ा से होकर जा रहे थे कि एक घर के बरामदे से वह पक्षी बोल उठा, 'लाटू दादा, लाटू दादा!' उसका चिल्लाना सुनकर लाटू महाराज समझ गये कि राम बाबू के घर का पक्षी ही उड़कर यहाँ चला आया है। अतः उन्होंने गृह-स्वामी के पास जाकर पक्षी की माँग की, परन्तु गृहस्वामी ने उनकी बात नहीं मानी। उन्होंने जाकर राम बाबू को इस बात की सूचना दी। तब राम बाबू स्वयं उक्त गृहस्वामी के पास आये और उन्हें पाँच रुपये देकर पुनः उस पक्षी को खरीद लिया।

(पृष्ठ २७ का शेषांश)

अर्थात् यह अखण्डमण्डलाकार चराचर जगत जिससे व्याप्त है उनके चरण कमलों के दर्शन कराने वाले श्री गुरुदेव को नमस्कार है।

सकल कला गुणधाम

पार्वती जी ने पुनः कहा, हे नाथ! आप शिव अर्थात् मंगलकारी हैं और समस्त कलाओं और गुणों के धाम हैं। अर्थात् आप पूर्ण हैं। हे नाथ? आप योग, ज्ञान और वैराग्य के भण्डार हैं। आपका नाम शरणागतों के लिए कल्पतरु है अर्थात् आप सबकी मनोकामना पूर्ण करने वाले हैं।

अतः शिष्य को चाहिए कि वे अपने गुरुदेव को भगवद् दृष्टि से ही देखें।

गुरुगीता में कहा है,

गुरौ मनुष्यबुद्धिन्तु मन्त्रे चाक्षर भावनम्।
प्रतिमासु शिलाबुद्धि कुर्वाणो नरकं व्रजेत्।

अर्थात्—जो गुरु में मनुष्य बुद्धि रखे, गुरु प्रदत्त मन्त्र में अक्षर (वर्णाक्षर) की भावना करे और प्रतिमा को शिला माने वह मनुष्य नरकगामी होता है।

गुरु-शिष्य का सम्बन्ध तो बड़ा ही मधुर होता है। स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है:—

"मैं गुरु को नमस्कार करता हूँ जो दैवी आनन्द की मूर्त्ति हैं, उच्चतम् ज्ञान के विग्रह हैं, और महानतम दैवी आनन्द के दाता हैं, जो शुद्धपूर्ण अद्वितीय सनातन सब सुख-दुःख से परे सर्वगुणातीत और सर्वोच्च हैं। वास्तव में गुरु ऐसे ही होते हैं। इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि शिष्य उन्हें ईश्वर समझता है और उनमें विश्वास रखता है, श्रद्धा रखता है, उनकी आज्ञा का पालन करता है और बिना शंका किए उनके पीछे चलता है। गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध ऐसा ही है।"

□

तुम ही ब्रह्म हो

[यह कहानी उपनिषद् से उद्धृत हैं। स्वामीजी ने अपने राजयोग ग्रन्थ में इसे लिखा है।]

एक देवता और एक असुर—दोनों मिलकर एक महापुरुष के पास ज्ञान लाभ करने हेतु गये थे। दीर्घ काल तक उन्होंने गुरु-सेवा की एवं गुरु-गृह में ही वास भी किया। एक दिन गुरुदेव ने उन्हें बुलाकर कहा. "तुम जो खोज रहे हो, जिस सत्ता का संधान कर रहे हो, वह तो स्वयं तुम हो, तुम ही ब्रह्म हो।"

दोनों शिष्य हर्षातिरेक से झूम उठे। दोनों ने सोचा कि अब हमारा शिक्षण कार्य समाप्त हो गया। अतः गुरु से सप्रेम विदाई ले अपने घर लौट आये। वहाँ सभी कुटुम्बियों एवं आत्मियों को निमन्त्रण देकर उन्होंने कहा "जिस चीज को हम जानने गये थे, वह जान गये। गुरुदेव ने कहा, कि हम ही ब्रह्म हैं। अतः आओ मौज मनाएँ आनन्द करें।"

नृत्य-गीत, खान पान के मध्य वे सब आनन्द मनाने लगे। इस तरह कुछ दिन व्यतीत हो गये। उसके बाद देवता के मन में एक प्रश्न उठा कि गुरुदेव ने कहा है कि हम ही ब्रह्म हैं। इसका तात्पर्य क्या है? 'इस शरीर का तो जन्म मृत्यु सब कुछ होगा ही। किन्तु ब्रह्म तो शाश्वत है। फिर यह कथन कि मैं ब्रह्म हूँ, कैसे सत्य है?

अपने प्रश्न का कोई सटीक उत्तर न पाकर देवता पुनः गुरुदेव के समक्ष उपस्थित हुए। असुर के मन में किसी प्रश्न का उद्रेक न हुआ। यह शरीर कैसे ब्रह्म हो सकता है यह प्रश्न उसे न सूझा था। विभिन्न प्रकार से वह अपने शरीर का यत्न करता एवं नित्य नूतन भोग-विलस में लीन रहता। वह पूर्णतः निश्चिन्त था।

देवता ने अपने गुरु के समक्ष जाकर कहा. "गुरुदेव, आपने कहा था कि हम ही ब्रह्म हैं। आपने क्या हमारे नश्वर शरीर के सम्बन्ध में ही कहा था? परंतु शरीर तो नश्वर है। ब्रह्म तो शाश्वत-नित्य हैं"।

गुरु ने उत्तर दिया, "नहीं, तुम स्वयं ही विचार करो। तुम ही ब्रह्म हो।"

तब देवता ने सोचा, "शरीर के अन्दर जो प्राण है, गुरुदेव शायद उसी की बात कर रहे होगें।" "परन्तु कुछ ही दिन पश्चात् देवता के मन में एक नयी समस्या आ खड़ी हुई। जिस शक्ति से शारीरिक कार्यों का संचालन होता है वह प्राण है। देवता ने सोचा, "जब हम उपवास या अनशन करते हैं, तब हमारे प्राण निस्तेज हो उठते हैं। परन्तु सही एवं पौष्टिक भोजन के द्वारा वे पुनः सतेज हो जाते हैं। ब्रह्म में कभी परिवर्तन नहीं होता। ब्रह्म कभी सतेज या निस्तेज नहीं होता। तब प्राण ब्रह्म कैसे हो सकता है?"

वे पुनः गुरु के पास गये एवं पूछा, "गुरुदेव, क्या आपने ब्रह्म कहकर प्राण को परिलक्षित करना चाह था?

गुरु ने उत्तर दिया, "नहीं, तुम ही ब्रह्म हो।" गुरु के वचन पर विचार करते-करते देवता अपने घर वापस आ गये। बहुत सोचने के पश्चात् उन्होंने सोचा कि तब मन ही ब्रह्म है, गुरुदेव तब मन ही की बात कर रहे थे।"

फिर कुछ दिन पश्चात् देवता ने यह अनुभव किया कि मन भी सदा परिवर्तित होता रहता है। कभी सुविचारों से भर जाता है तो कभी यही मन कलुषित भावनाओं से भर जाता है। प्रतिक्षण कितने ही भावों का मन में, उदय होता है, यह

अनगिनत है। जो परिवर्तनशील है, वह ब्रह्म कैसे हो सकता है ?

वे पुनः गुरु के समीप गये एवं प्रश्न किया, "गुरुदेव आपने क्या मन को ब्रह्म कहा था ?"

गुरु ने कहा, 'नहीं, तुम ही ब्रह्म हो।"

देवता फिर घर लौट गये। घर जाकर वे गुरु के वचन पर विचार करने लगे। सत्य को जानने के लिए उनका मन अत्यंत व्याकुल हो उठा। सर्वस्व छोड़ उनके मन में उठता, "मैं ब्रह्म हूँ, मैं ही ब्रह्म हूँ।"

इस प्रकार अनेक दिनों के पश्चात् उन्होंने जाना कि ब्रह्म शरीर नहीं, मन नहीं, प्राण भी नहीं है। शरीर, मन, प्राण को छोड़कर भी मानव में एक वस्तु विद्यमान रहती है वह है, आत्मा। अमर सर्व-शक्तिमान आत्मा ही हमें ब्रह्म बनाती है। आत्मा ही वह ब्रह्म है। वही आत्मा-रूपी ब्रह्म ही मानव का यथार्थ एवं असली स्वरूप है।

विवेक शिखा—स्थायी कोष के दाता

१.	एक भक्तिमती महिला		इलाहाबाद	५,००० रुपये
२.	एक शुभैषी	—	पुणे	२०० रुपये
३.	श्री एस० के० चक्रवर्ती	—	इलाहाबाद	२७ रुपये
४.	श्री पृथ्वीराज शर्मा	—	ठण्डी, राजस्थान	३०० रुपये
५.	श्री दीपक श्रीवास्तव	—	पटना (बिहार)	१०१ रुपये
६.	एक शुभ चिन्तक	—	इलाहाबाद	२५० रुपये
७.	भी० बी० उरकुडे	—	चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)	५० रुपये
८.	श्रीमती शान्ति देवी	—	इन्दौर (मध्य प्रदेश)	१०० रुपये
९.	श्री एस० डी० शर्मा	—	अहमदाबाद	३०१ रुपये
१०.	श्रीमती प्रभा भार्गव	—	बीकानेर (राजस्थान)	२०० रुपये
११.	श्री रामलायक सिंह	—	सम्होता (छपरा)	२५ रुपये
१२.	डा० एस पी० भार्गव	—	अजमेर	१०० रुपये
१३.	श्री राम छविला सिंह	—	मुजफ्फरपुर	२५ रुपये
१४.	श्री निखिल शिवहरे	—	दमोह (म० प्र०)	१५१ रुपये
१५.	श्रीमती उषारानी कर्ण	—	सुरसंड, (सीतामढ़ी)	१०० रुपये
१६.	श्री पी० सी० सरकार	—	नरेन्द्रपुर (प० ब०)	१०० रुपये
१७.	श्रीमती मीरा मित्रा	—	इलाहाबाद	२०१ रुपये
१८.	श्री गोपाल शं० तायवाडे	—	अमरावती (महाराष्ट्र)	१०० रुपये
१९.	श्री महादेव शि० गुंडावार	—	भद्रावती (महाराष्ट्र)	५० रुपये
२०.	श्री राजीव कुमार राजू	—	सैदपुर, पटना-४	३१ रुपये
२१.	श्री राज सिंह	—	गाजियाबाद (उ० प्र०)	५० रुपये
२२.	श्री चन्द्र मोहन	—	टुण्डला (उ० प्र०)	९८५ रुपये
२३.	श्री के० अनूप	—	अरुणाचल प्रदेश	२० रुपये

निवेदन— १. स्थायी कोष के लिए दान सम्पादकीय पते पर भेजने की कृपा करें।

२. चेक या ड्राफ्ट 'विवेक शिखा" के नाम से भेजें।

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार में उपलब्ध

आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार कर

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

डाक पंजीयित संख्या सी. एच. पी.—१४—८३

स्वामी विवेकानन्दकृत सम्पूर्ण साहित्य

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
धर्म तथा अध्यात्म		**योग**	
धर्म विज्ञान	५.००	ज्ञानयोग	१४.००
धर्मतत्त्व	४.५०	राजयोग (पातंजल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्यासहित)	६.००
धर्मरहस्य	३.००	प्रेमयोग	५.००
हिन्दूधर्म	६.००	कर्मयोग	६.००
हिन्दूधर्म के पक्ष में	२.००	भक्तियोग	४.००
शिकागो वक्तृता	१.५०	ज्ञानयोग पर प्रवचन	२.००
नारदभक्तिसूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान	३.००	सरल राजयोग	६.००
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता	४.५०	**जीवनी**	
भगवान बुद्ध तथा उनका सन्देश	२.००	महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	६.००
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)	८.००	मेरे गुरुदेव	२.५०
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य)	४.००	ईशदूत ईसा	१.००
वेदान्त	४.२५	पवहारी बाबा	२.००
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	३.५०	**सम्भाषणात्मक**	
आत्मतत्त्व	३.५०	विवेकानन्दजी के संग में	१३.००
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	५.००	स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	५.००
मरणोत्तर जीवन	१.५०	विवेकानन्दजी के संस्मरण	५.००
		विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	३.००

प्रकाशक : रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर-४४००१२

श्रीमती गंगा देवी जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना - ४ में मुद्रित।